

१५
१५

साहित्य समालोचन

सन १९३५

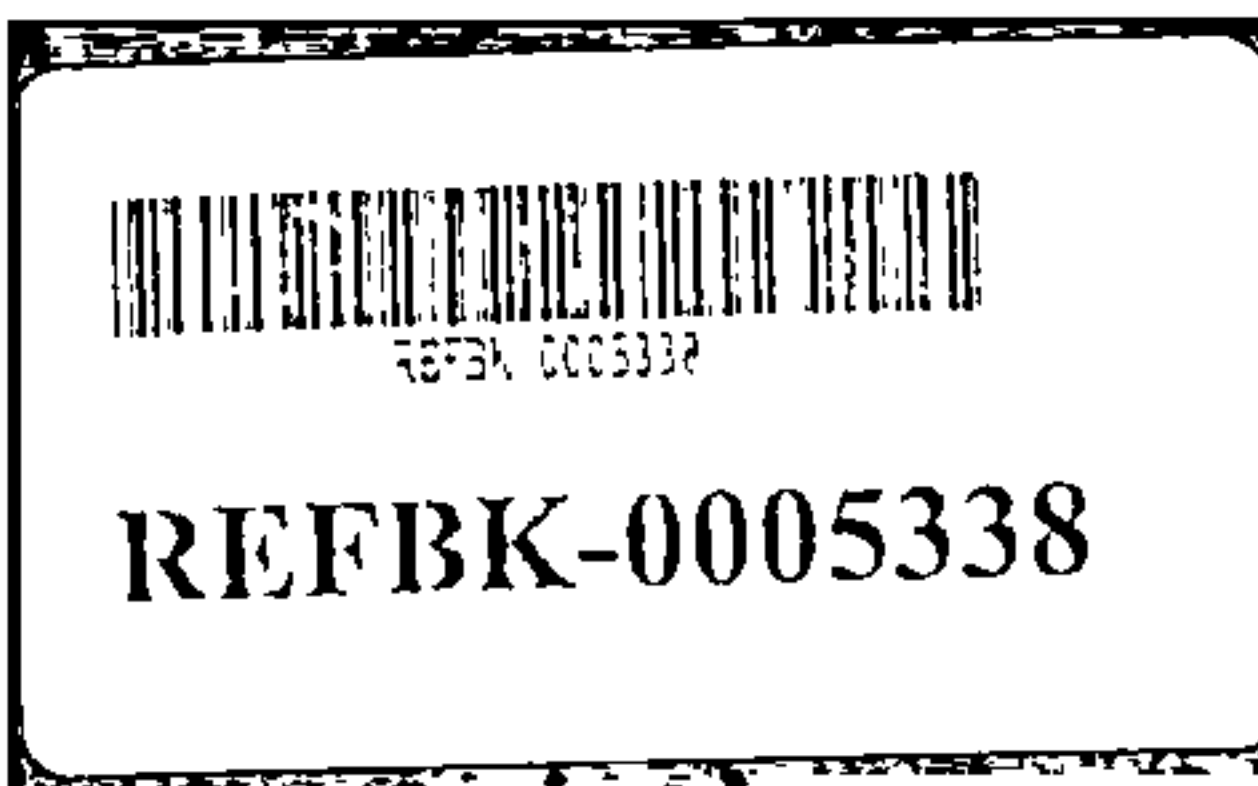
म. ग्रं. सं. ठाणे

विषय

इतिहास

सं. नं.

५९



गोपाल गोविंद अधिकारी

साहित्य समालोचन

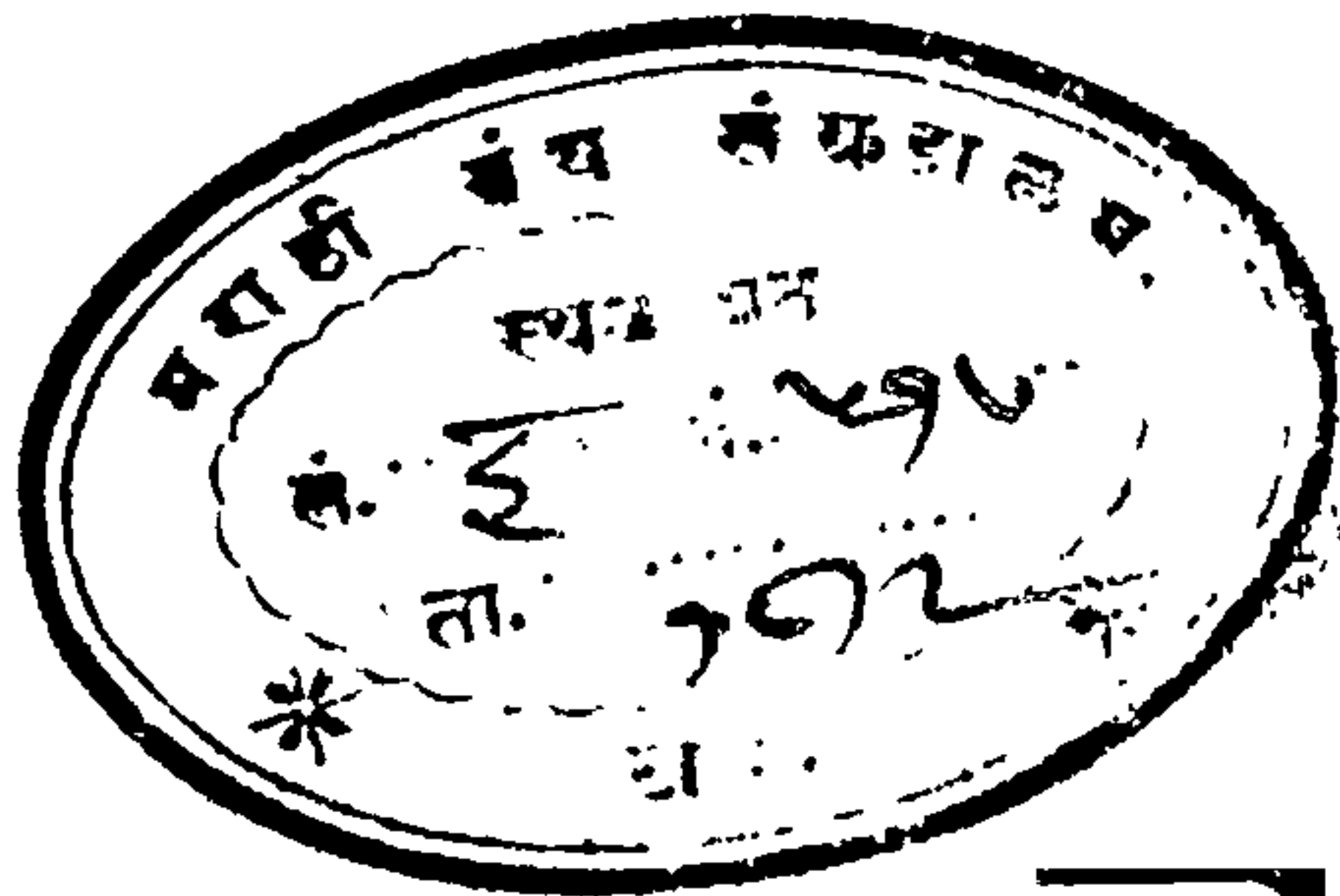
सन १९३५

लेखक

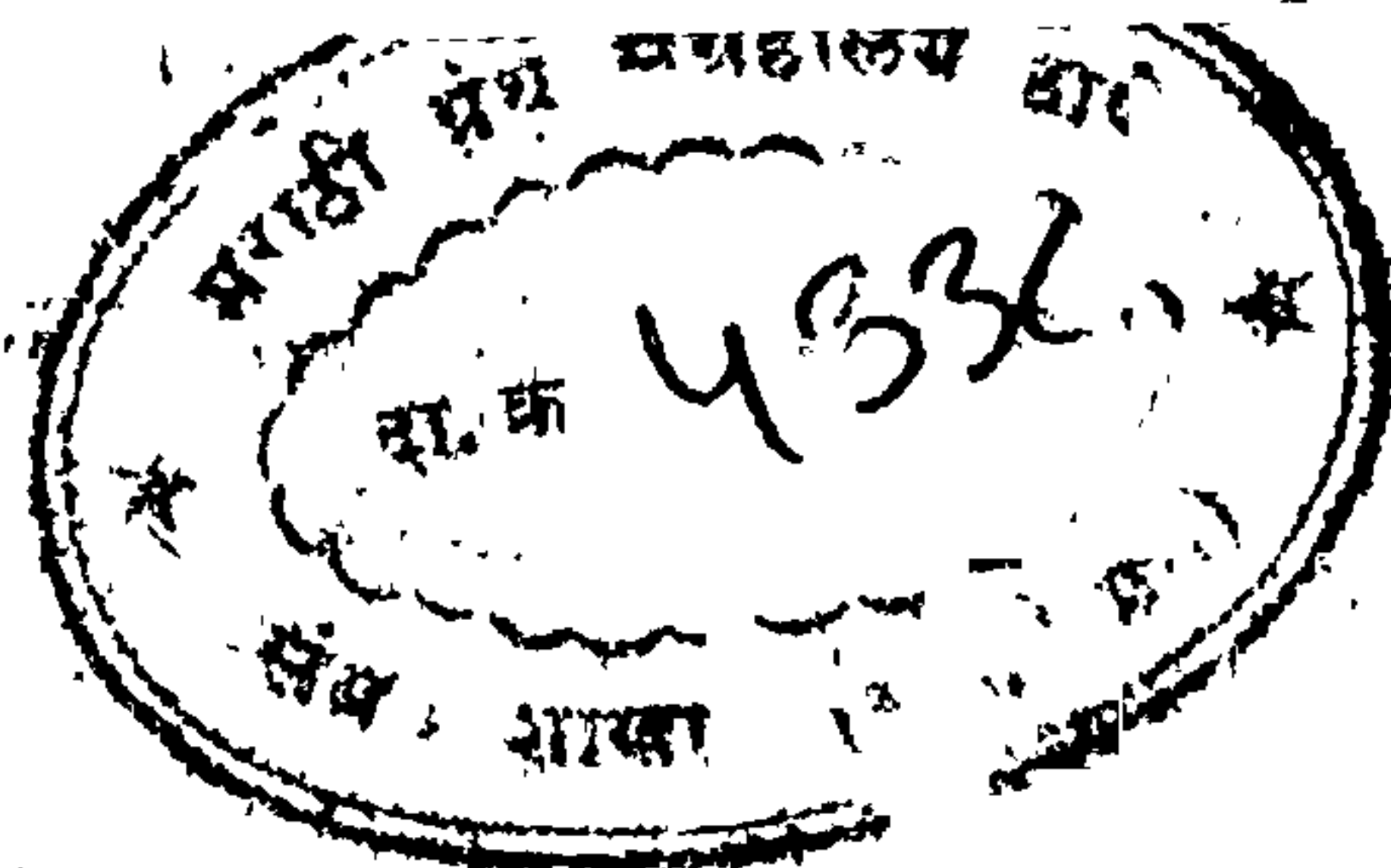
गोपाल गोविंद अधिकारी

प्रकाश

महाराष्ट्र प्रकाशन संस्था, मुंबई.



REFBK-0005338



मुद्रक

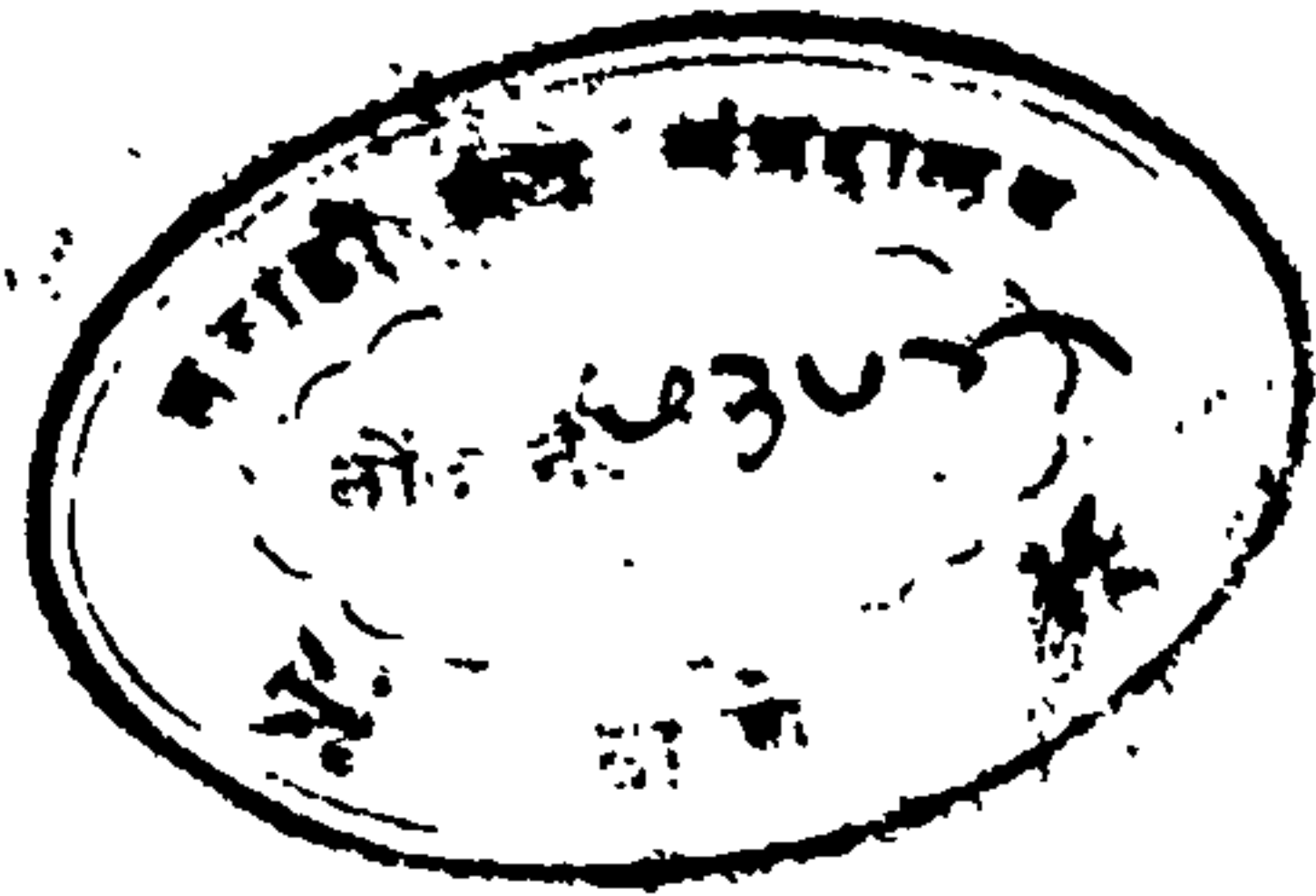
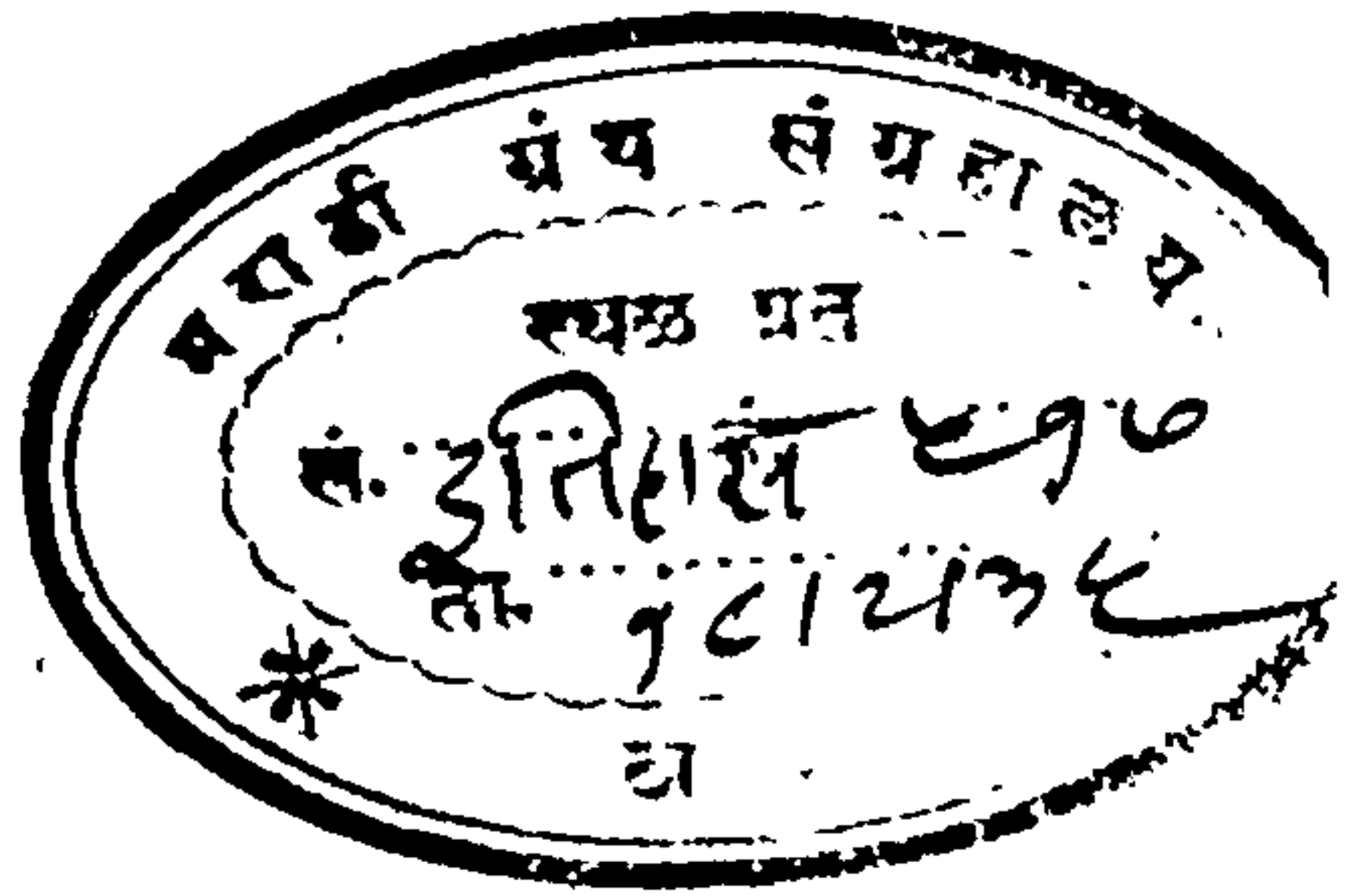
नरहरी माधवराव यंदे

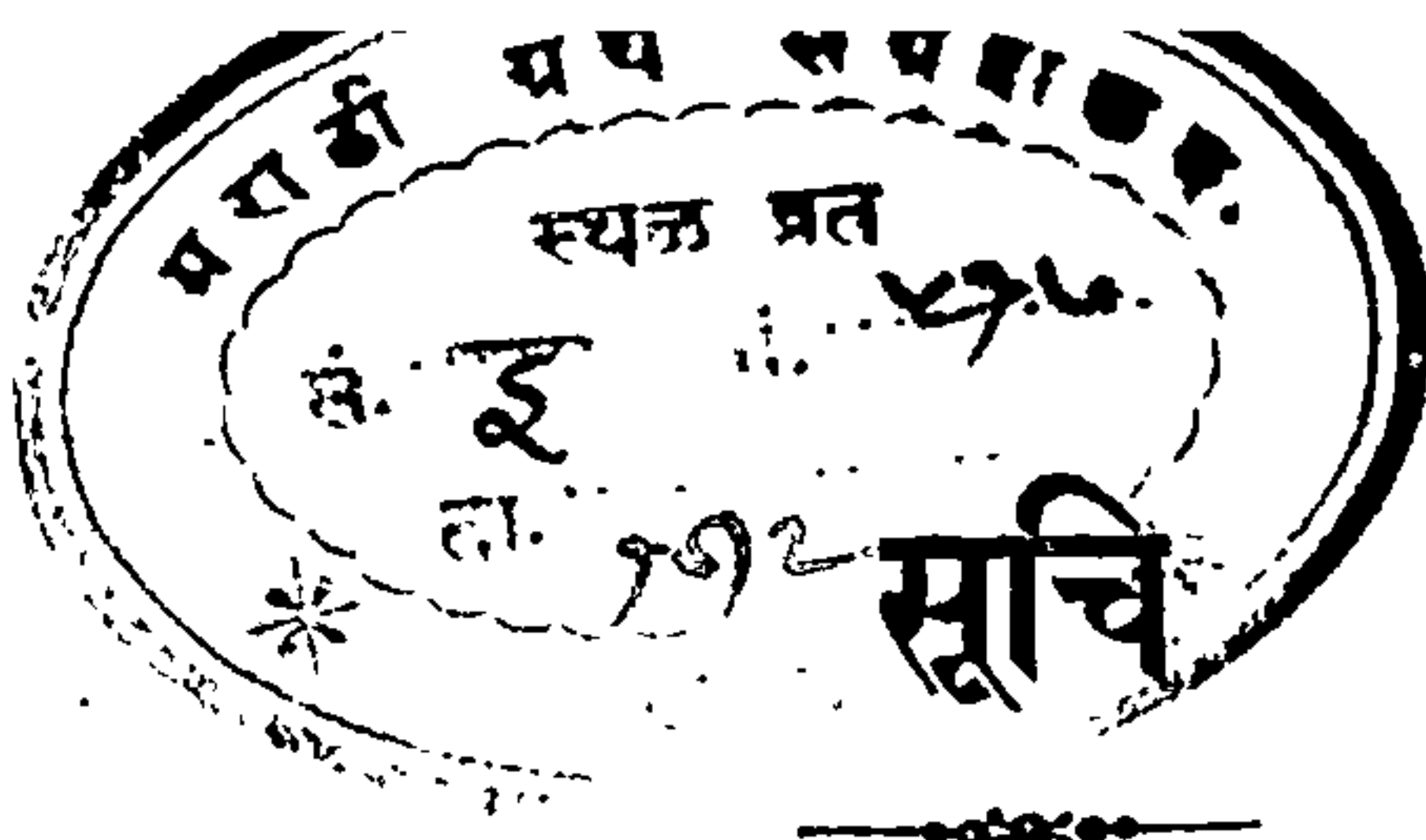
३८० इंदुप्रकाश प्रेस, मुं. नं. २

प्रकाशक

गोपाल गोविंद अधिकारी

१५-१७-त्रिभुवन रोड मुंबई नं. ४





| श्री | | आनंद | ९० |
|---|----|----------------------|------------|
| श्री सयाजी साहित्यमाला | | उ | |
| श्रीखंडे | ५९ | उदय | २१ |
| श्रीसमर्थ चरित्र | ८० | उद्यम | ३२ |
| | | उद्धार कादंबरी | ४८, ५२, ७३ |
| | | उघडझाप | ७७ |
| | | | |
| | | ऐ | |
| अत्रे प्रि. प्र. के. ५२, ५८, ६०, ६५, ६७ | | ऐक्य | २६ |
| अर्थ | ३७ | | |
| अरुणोदय | ६१ | क | |
| अरविंदबाबू घोष | ७९ | कशाळकर शान्ताबाई | १० |
| अर्वाचीन मराठीसाहित्य | ८४ | कमतनूरकर | ११ |
| आदर्श वैश्य | ३६ | करंदीकर अ. ज. | ६१ |
| आपटे ह. ना. | ५२ | कथामालती | ६५ |
| आजकालचा महाराष्ट्र | ८५ | कथासुवर्ण | ६६ |
| आळतेकर डॉ. | ८४ | कर्नाटक प्रेस | ५५ |
| आळतेकर प्रो. माधवराव | ८९ | कला | ३५, ४८, ६७ |
| आकाशगंगा | ५९ | कलादर्श | ३५ |
| आवडत्या गोष्टी | ६४ | कळ्यांचे निश्वास | ५१ |
| आत्मदान | ७५ | कारखानीस दत्तप्रसन्न | ६० |
| अच्युतराव कोल्हटकर- | | काव्यरत्नावली | ३८ |
| स्मारक ग्रंथ | ९५ | काव्यगायन | ४७ |
| ओक शामराव | ३२ | कान्यकुसुमकविका | ६१ |

| | | | |
|----------------------------|--------|---------------------|--------|
| काव्यकेतकी | ३८ | | |
| काणेकर | २३ | घराबाहेर | २३, ७१ |
| किलोस्कर डॉ. वासुदेवराव | २९ | घरजावई | ४८ |
| किलोस्कर मासिक २९, ३०, ३१ | | | |
| केसरी | २४, ३४ | | |
| केळकर न. चिं. | १९, ३४ | | |
| केशवकुमार | ५८ | | |
| केळकर नी. म. | ६८ | | |
| कोल्हटकर प्र. श्री. | ५४, ६५ | | |
| कुलावासमाचार | २६ | | |
| कोपरखळ्या | ९९ | | |
| | ख | | |
| खांडेकर वि. स. ४०, ४१, ४९, | | | |
| ५२, ६५, ६६, ६७ | | | |
| खाड्ये प्रिं. | ३६ | | |
| खेड्यातील स्वभावचित्रे | ६४ | | |
| खाडीलकरांची नाट्यसृष्टी | ८४ | | |
| खेळगडी | ९० | | |
| | ग | | |
| गोवे साहित्य संमेलन | ४० | | |
| गाजराच्या पुंग्या | ६० | | |
| गोडबोले वकील | १२ | | |
| गुर्जर वि. सी. | ५२ | | |
| गडकरी बा. सं. | ७२ | | |
| | | घ | |
| | | | |
| | | | |
| | | च | |
| | | चित्रा | २३, २४ |
| | | चौधरी सोपानदेव | ३२ |
| | | ज | |
| | | जननी | ३७ |
| | | जाधव भास्करराव | ४२ |
| | | जाळ्यांती भाशा | ७६ |
| | | जोगळेकर | १० |
| | | जोशी य. | ५२, ६६ |
| | | जोशी प्रो. चिं. वि. | ६३ |
| | | जावडेकर | २४ |
| | | झ | |
| | | झेंडूची फुले | ५८, ६१ |
| | | त | |
| | | तरुण भारत | २६ |
| | | तत्वज्ञान मंदिर | ३६ |
| | | ताम्हणकर. का. म. | ३२ |
| | | त्याग नाटक | ७० |
| | | तुकाराम नाटक | ८० |
| | | तुळपुळें प्रो. | ८४ |
| | | ताम्बे यांची कविता | ५७ |
| | | त्रिलोकेकर खंडेराव | २९ |

सूचि

३

| | | |
|-----------------------|---------|----|
| त्रिकाळ | १६, | १८ |
| तुळपुळे शौ. शालिनीबाई | | १७ |
| तेज | १६, १७, | ४८ |

द

| | | |
|-------------------|--|----|
| दक्षिण महाराष्ट्र | | २६ |
| दाभोळकर आणि मंडळी | | ५५ |
| दांडेकर सौ. मालती | | ६५ |
| दीपकळी | | ६५ |
| दक्षित चं. ग. | | ६० |
| दिवेकर शास्त्री | | २९ |
| दुहेरी संसार | | ७६ |
| दुर्दैवी मोहरे | | ६५ |
| दवलकलव | | ९० |

ध

| | | |
|-------------------|--|----|
| ध्रुव | | ३८ |
| धर्मशास्त्र विचार | | ८५ |

न

| | | |
|-------------------|-----|----|
| नवशक्ती दैनिक | | १४ |
| नवाकाळ | | १५ |
| नवमत | ३६, | ४८ |
| नटीचे आत्मकथन | | ४८ |
| नवजीवन | २९, | ५० |
| नीती व कलोपासना | | ४८ |
| नवे डोळे (नाटक) | | ४९ |
| निर्मिड | ९, | १२ |
| निर्माल्यातील कळी | | ७५ |

| | | |
|--------------------------|--|----|
| निरुक्ताचे मराठी भाषांतर | | ८८ |
| नंदादीप | | ७४ |
| नाटक मासिक | | ३८ |
| निफाडकर | | ३६ |
| नवसाहित्यमाला | | ५५ |

प

| | | |
|---------------------------|----------------|----|
| परचुरे पुराणिक मंडळी | | ५४ |
| पखरण | | ६६ |
| पराधीन | | ७६ |
| पटवर्धन प्रो. मा. त्र्यं. | ४९, | ६१ |
| परुळेकर डॉ. ना. भी. | | १७ |
| पावित्र्यविडंबन | | ५२ |
| पांगारकर ल. रा. | ४७, | ८१ |
| पाटील मुकुंदराव | | ४२ |
| पाठक | | ३५ |
| पारिजात | | ३५ |
| प्रवासी | | ९ |
| प्रतिभा | १६, २८, २३, ६१ | |
| | ६२, ७१, ८० | |
| प्रभुप्रभात | | १६ |
| प्रमोद | | २५ |
| प्रबोध | | २६ |
| प्रेक्षक | | २५ |
| प्रागतिक | | २६ |
| प्राविण्य | ३२, ३३ | |
| प्रल्हादराय | | ६१ |

| | | | |
|------------------------------|---------|------------------------------|---------|
| पत्री | ६१ | ब्रह्मज्ञान आणि बुवाबाजी | ८४ |
| प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धती | ८५ | बर्वे वि. ल | ६९ |
| प्रभुतरुण | ३६ | बेहेरे प्रो. ना. के. | ४९, ९२ |
| पुरुषार्थ | ३१ | | |
| प्राविण्य | ३२, ३३ | भ | |
| पूर्णंदू | ३८ | भविष्य | ३८ |
| पुण्याचे शारदोपासक संमेलन | ४६ | भविष्य भास्कर | ३८ |
| पेशवेकालीन महाराष्ट्र | ८३ | भाषांतर मासिक | ५५ |
| पैसाच पैसा | ७० | भाला | ३८ |
| | | भारतीय संगीत | ३८, ८० |
| फ | | भास्करभट बारीकर | ८० |
| फाटक न. र. | १५ | भारतीय चित्रकला | ८५ |
| फडके प्रो. ना. सी. | २९, ४९, | भाटे गो. चिं. | ८५ |
| | ५२, ६६ | भोळा शेतकरी | ३३ |
| फुलोर | ३६ | भाळेराम डॉ. | ४२ |
| | | भंगलेले देऊळ | ५१, ७८ |
| ब | | भा. इ. सं. मंडळाचे त्रैमासिक | ३६ |
| बलवंत साप्ताहिक | २६ | | |
| बाळासाहेब पंतप्रतिनिधी | १२, | म | |
| | १३, १४ | महाराष्ट्र शारदा | ९, ३५ |
| बागवे विठ्ठलराव | ४२ | महाराष्ट्र साहित्य परिषद | १०, ४ ३ |
| बांडगूळ | ५९ | महाराष्ट्र साहित्य संमेलन | १०, ४६ |
| बाजी प्रभु देशपांडे (पोवाडा) | ६१ | महाराष्ट्र शारदामंदिर | ४० |
| बायकी कावा | ७० | महाराष्ट्र साहित्यपत्रिका | ३६ |
| बालबोध मेवा | ९० | महाराष्ट्र | २०, २१ |
| बनहट्टी प्रो. | ५४ | मानकर सुं. मु. | २३ |
| बोकील | ५२ | मातृभूमी | २६ |

सूचि

५.

| | | | |
|------------------------------|------------|---------------------|------------|
| मनोहर | ३०, ३१, ३८ | यशोधन | ५२ |
| महाराष्ट्र चेंबर ऑफ कामर्स | ३३ | यशोगंध | ५९ |
| माडखोलकर ग. त्र्यं. | ५० | यज्ञमंडप | ७० |
| माधवज्यूलीयन | ५२, ५९ | यशवंत कवि | ५८ |
| महाराष्ट्राचा प्राचीन इतिहास | ८० | | र |
| मराठी वाङ्मयाचा इतिहास | ८१ | रत्नाकर | ३३ |
| महाराष्ट्र रसवंती | ९१ | राजवाडे शंकरराव | ५८ |
| मराठेशाहीची वध प्रतिपदा | ७७ | राजवाडे स. मंडळ | ३६ |
| महाराष्ट्र सांवत्सरिक | ८३ | रामशास्त्री | २८, ९४ |
| मानसमंदिर | ८४ | राजवाडे धातुकोश | ८९ |
| माधव कवि | ५६, ५७ | रुक्मिणी स्वयंवर | ८८ |
| मोटे ह. वि.. | ५१, ५४, ५६ | | ल |
| मोघे यांचा बुकडेपो | ५५ | लोकमान्य दैनिक | |
| मायदेव प्रो. | ५७ | लोकशक्ति | २४ |
| मन्वंतर | ३७ | लोकशिक्षण | ३३, ३४, ५९ |
| मुंबई मराठी साहित्य संघ | ८९ | लोकमित्र | ३८ |
| मुंबई साहित्य संमेलन | ४३, ४४, ५३ | | व |
| मौज प्रिंटिंग ब्यूरो | ५५ | वसंत मासिक | ४८ |
| मुलांचे मासिक | ९० | वसुंधरा | २३ |
| मौज | २१ | वेद | ४२ |
| माटे श्री. म. | ८३, ९२ | वाडेकर प्रो. दे. द. | ११, १२ |
| मालविका | ६१ | वायुपुत्र | २७ |
| महारवाडा | ७० | वाङ्मयोपासक मंडळ | ८९ |
| | य | वरेरकर भा. वि. | ९४ |
| यशवंत मासिक | ३१, २२ | वनभोजन | ९९ |

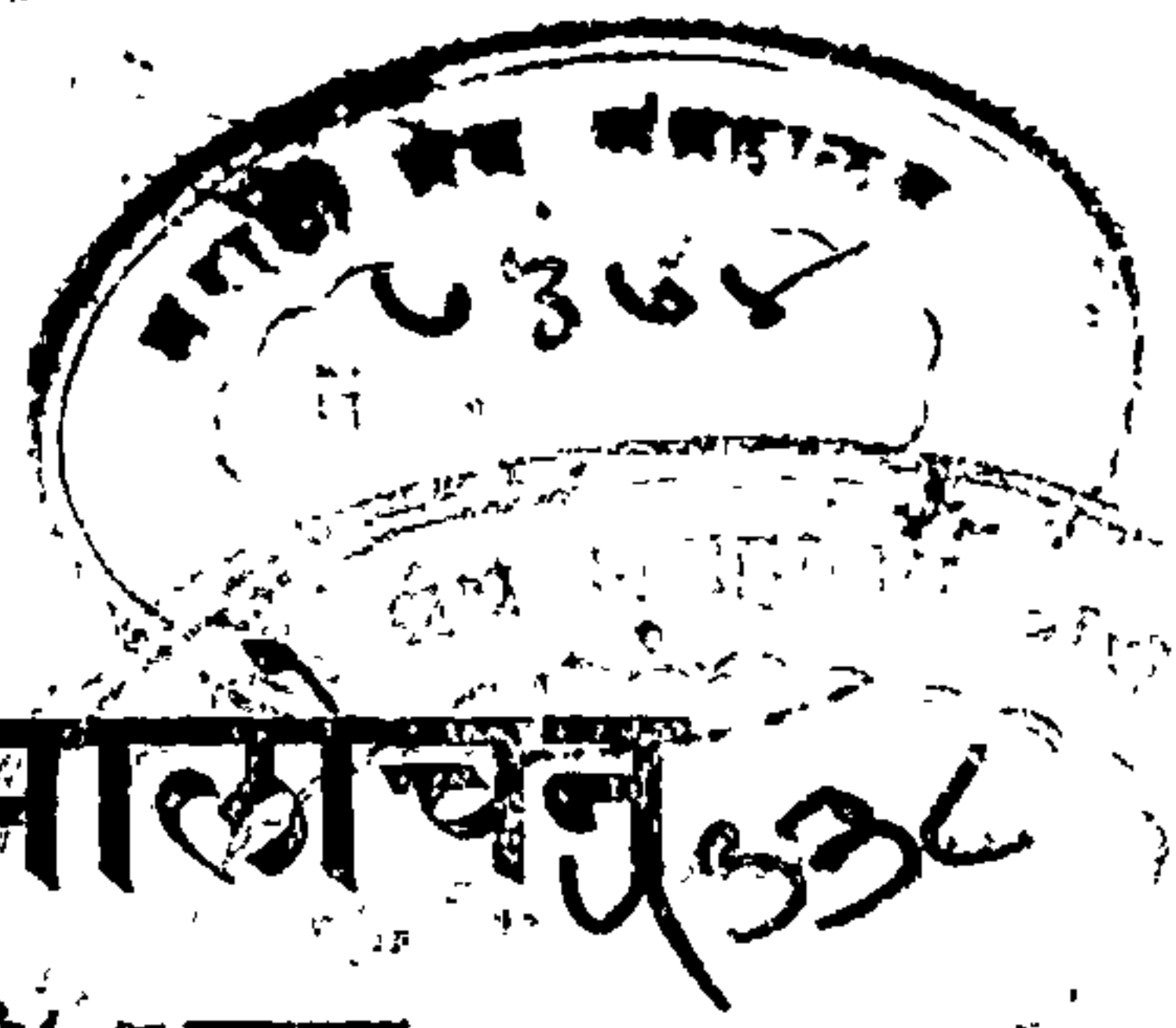
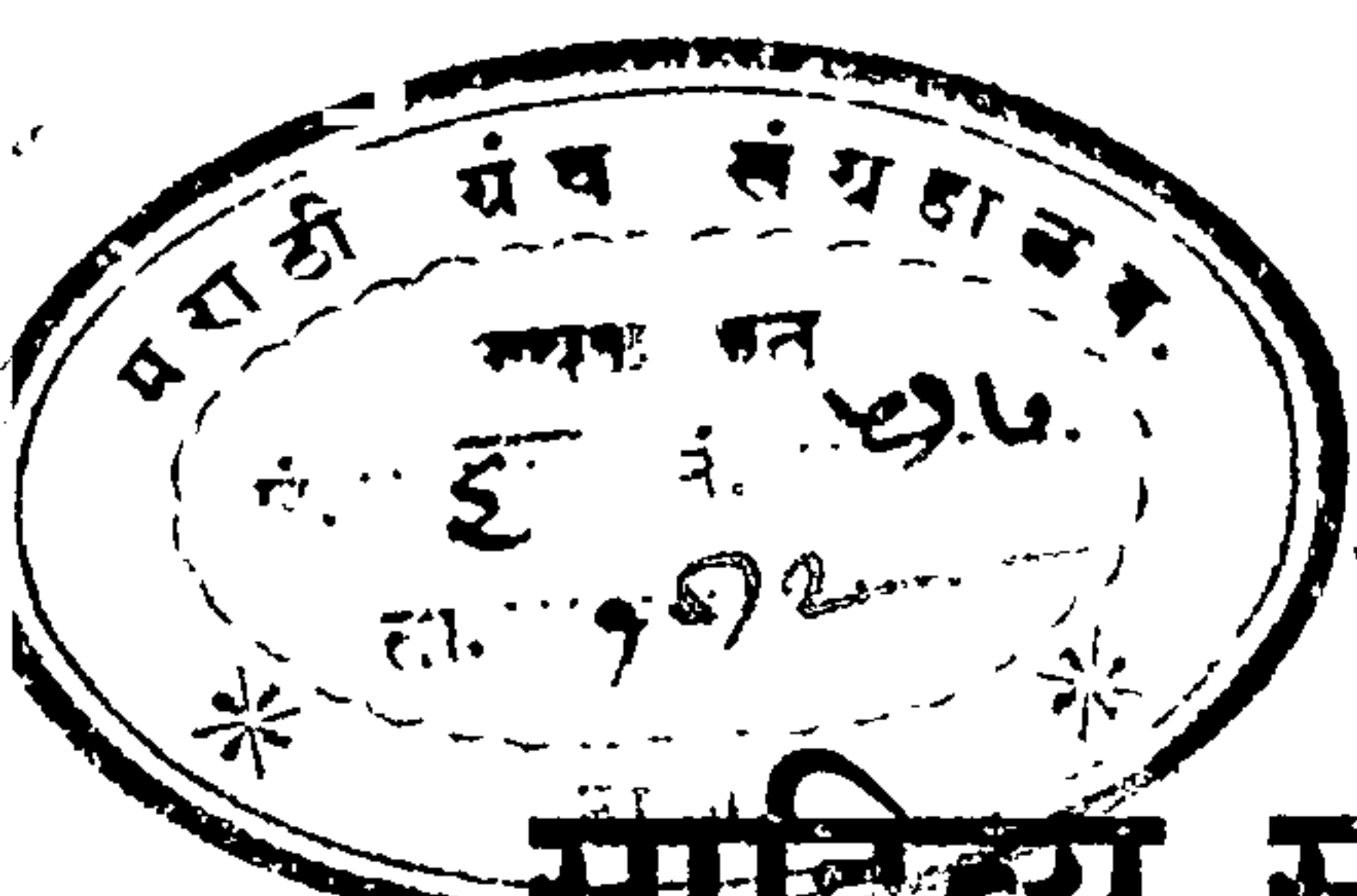
| | | | |
|---------------------|--------|--------------------------|--------|
| विज्ञानबोध | ८२ | स | |
| विरलेले स्वप्न | ७८ | सरदेसाई प्रो. लक्ष्मणराव | ६७ |
| विरलेले वस्त्र | ७६ | समाजस्वास्थ्य | ३८ |
| विखुरलेले प्रेम | ७५ | सह्याद्री | ३३, ३४ |
| विस्कटलेला संसार | ४८ | सत्यवादी | २६ |
| विसावा | ६५ | सकाळ | १६, १७ |
| विश्ववाणी | ३५ | समाजक्रांती व हिंदुस्थान | |
| विहंगम | ६५ | सामाजिक सिमोलॅघन | ४८ |
| विविध ज्ञा. विस्तार | २९, ३३ | सातवळेकर | १३ |
| विद्याविलास | २६ | सावरकर बॅ. | २२, २९ |
| विहार | २४ | सावरकर द. ग. | १५ |
| विविधवृत्त | ० २१ | साहित्य आणि समाजजीवन | ८६ |
| विद्यासेवक बी. ए. | ८६ | साप्ताहिक सकाळ | २२ |
| दांप्रेश्वरी | ३५ | सामंत र. ज. | ३५ |
| वाङ्मय | ३६, ९५ | सागरसाहित्य | ५५ |
| वाग्विलास | ३५, ४८ | साळगांवकर प्रो. | ६१ |
| वैभव | २५ | सागराच्या लाटा | ६४ |
| वैनतेय | २६ | सावकार नाटक | ७० |
| व्यापारी जगत | २३ | सिनेमा | २५ |
| चूदा | ७२ | सिनेमा सृष्टी | २५ |
| | | स्त्री | ३०, ३१ |
| श | | संगम (संग्रह) | ६४ |
| शेटे तु. पुं. | ५४ | संगम कादंबरी | ७४ |
| शहाणे कु. मैना | ८४ | संसार आणि धर्म साधन | ८४ |
| शब्दकोश | ८९ | संजीवनी | २७, ३० |
| शिंदे मा. कृ. | ३६ | संराक | ५९ |
| शिंदे जनरल | ११ | | |

सूचि

७

| | | | |
|-------------------------|----|--------------------------------|----|
| सुवर्ण | २९ | | |
| सिमोल्लेघन | ४८ | ह | ७० |
| स्वच्छंद | २४ | हिमकालिका | ६५ |
| स्वप्नरंजन | ५९ | हिंदूसमाज दर्शन | ८५ |
| साने | ६१ | हंस | ३८ |
| सोमण | ६४ | हडप वि. वा. | ५४ |
| सैरंग्री | ७० | हृदयनिवाद | ६६ |
| समईतील ज्योत | ७० | | |
| स्मृतिचित्रे | ७९ | क्ष | ६० |
| संगीत शास्त्रकार व कला- | | | |
| वंताचा इतिहास | ७९ | ज्ञ | |
| संपूर्ण किलोस्कर | ७१ | ज्ञानप्रकाश १५, १६, २१, ३९, ६१ | |
| | | ज्ञानमंदिर | ३६ |
| | | ज्ञानप्रदीप | १९ |





साहित्य समालोचन ५७५

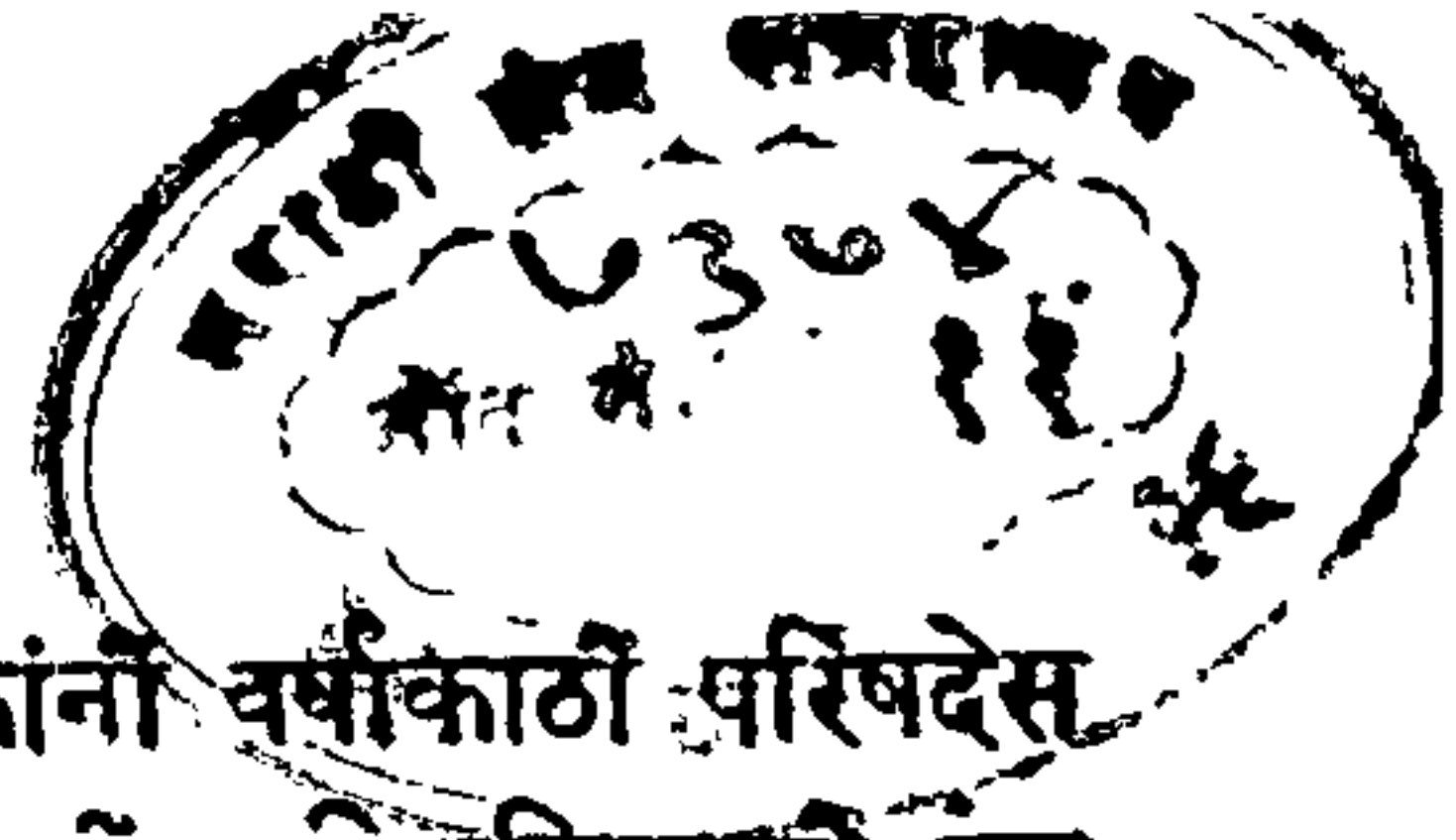
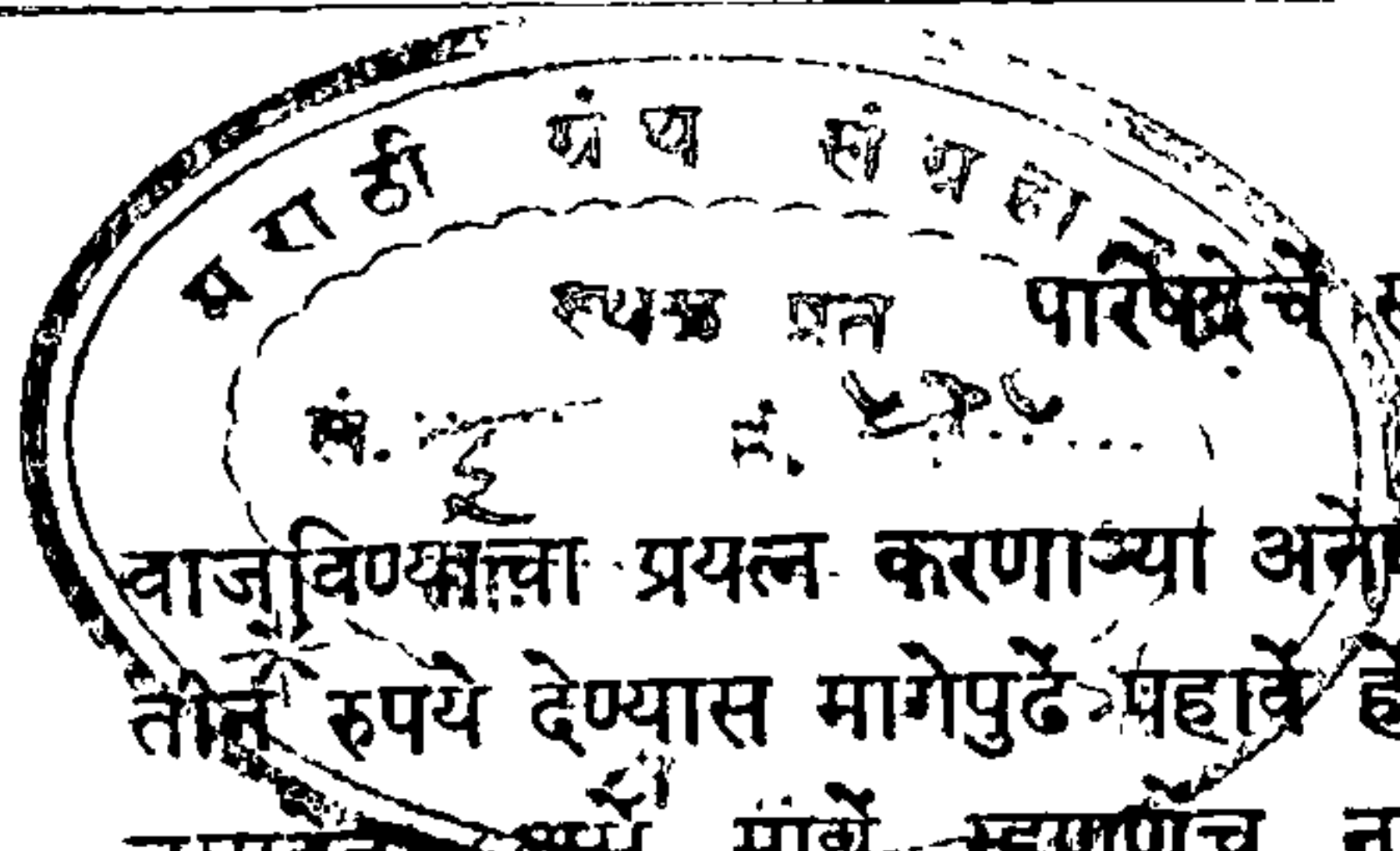
(सन १९३५ सालांतील मराठी वाङ्मयाचा आढावा)

गेली दोन वर्षे मराठी साहित्याचे समालोचन मी प्रसिद्ध केले व यंदाही सन १९३५ सालांतील कार्याचा आढावा 'प्रवासी' साप्ताहिकांतून घेण्याचे मी ठरविले होते, परंतु कांहीं अपरिहार्य कारणाने 'प्रवासी' साप्ताहिक बंद करावे लागल्याने स्वतंत्र पुस्तकरूपाने प्रसिद्ध करित आहे. दरसाल प्रसिद्ध होणाऱ्या वाङ्मयाचा थोडक्यांत जरी आढावा घेतला तरी तो बराच मार्गदर्शक होतो. आपण काय केले यांचे चित्र डाळ्यांपुढे उभे राहते व तेच उद्बोधक होत असल्याने अशा स्वतंत्र साहित्यसमालोचनाची आवश्यकता आहे. पहिल्या वर्षी म्हणजे सन १९३३ सालचे साहित्यसमालोचन 'निर्भीड' साप्ताहिकाच्या खास साहित्यसंमेलन अंकांत व दुसऱ्या वर्षी सन १९३४ सालचे समालोचन 'महाराष्ट्र शारदा' या मासिकाच्या पहिल्याच अंकांत प्रसिद्ध झालेले वाचून कांहीं लोकांनी अनाहुत प्रशंसोद्गार काढले होते. त्यामुळे हे कार्य माझ्याकडून याही वर्षी व्हावे ही माझी उत्कट इच्छा होती. आणि म्हणून महाराष्ट्र प्रकाशन संस्थेतर्फे मी हे स्वतंत्र पुस्तकरूपाने सन १९३५ सालांतील साहित्याचे हे समालोचन प्रसिद्ध करित आहे.

दरसालप्रमाणे मराठी भाषेत या सालीही बरीच पुस्तके प्रसिद्ध झाली. अनेक संमेलने भरली, कांहीं महत्त्वाचे आणि कांहीं क्षुब्धक

खरे पण मोठे वादं मांजले, नवी मासिके निघाली, कांहीं मासिके बंद पडली, नवे लेखक उदयास आले व कांहीं मार्गे राहिले, कांहीं प्रश्न असे उभे राहिले कीं त्यांच्या भविष्याची आजच कल्पना करून देण्याची आवश्यकता वाटत आहे. काव्ये म्हणू नका, नाटके म्हणू नका, कादंबऱ्या म्हणू नका, लघुकथा म्हणू नका सर्व कांहीं चीजा या साली बाजारांत आल्या. या सर्वांचे समालोचन क्रमाक्रमाने केले तर या सालच्या प्रगतीचा कल्पना 'जाणीका'स खात्रीने होईल.

मराठी वाङ्मयाचा विचार करणारी व प्रातिनिधिक अशी जी महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद तिच्यासंबंधीच प्रथम लिहितो. महाराष्ट्र साहित्यपरिषद हीच महाराष्ट्रातील प्रमुख व सर्वमान्य अशी संस्था आहे हे कोणासही नाकबूल करतां येणार नाही. महाराष्ट्र साहित्य संमेलने याच संस्थेच्या परवानगीने भरत असतात. परंतु अद्यापही परिषदेच्या घटनेचे अज्ञान चांगल्या प्रबुद्ध लोकांतही दिसून येते. मुंबई येथे भरलेल्या मुंबई साहित्य संमेलनांत परिषदेच्या घटने विरुद्ध कां. जोगळेकर यांच्यासारख्यांनी केलेला वावदूकपणा सोडला तरी सौ. शांताबाई कशाळकर यांच्यासारख्या विद्यावंत कार्यकर्त्या विदूषीने परिषदेतील अनेक प्रमुख लोकांचा स्नेह असूनसुद्धां जोगळेकरांच्या सुरांत सूर मिळविला हा माझ्या विधानांस पोषक पुरावा होय. महाराष्ट्र-साहित्य-परिषदेच्या मार्गे लक्षांत भरण्यासारखा कार्याचा संचय नसला तरी कालाचे वजन व बळ्या लोकांचा शाब्दिक कां होईना पाठिंबा आहे. परिषदेची मुख्य कचेरी पुणे येथे गेल्यापासून परिषदेच्या तेजस्वी भविष्य काळाची कल्पनाही होऊं लागलेली दिसते. पण असे असतांही या परिषदेच्या सभासदांच्या यादींत चांगल्या चांगल्या व नामवंत लेखकांची नावे आढळत नाहींत, ही कांहीं समाधानाची गोष्ट नव्हे. निरनिराळी मंडळे स्थापून स्वतांच्या कार्याची टिमकी



वाजविण्याचा प्रयत्न करणाऱ्या अनेक लेखकांनी वर्षाकाठी परिषदेस तीन रुपये देण्यास मागेपुढे पाहिले हे बरे नाही. ठिकठिकाणी संघ नसावेत असे माझे म्हणणेच नाही. सर्व मराठी वाङ्मयाच्या हिताहिताचा विचार करणाऱ्या साहित्य परिषदेच्या वाढीची व तिला कार्यक्षम करण्याची जबाबदारी मराठी लेखकांवर व साहित्यप्रेमी लोकांवर नाही काय ? ज्यांना दरसाल रुपये तीन वर्गणीसाठी परिषदेकडे पोचते करणेही कठीण आहे त्यांना मी दोष देत नाही. पण जे स्थानिक संघासाठी कांहीं दाम खर्च करतात त्यांनी प्रथम महाराष्ट्र साहित्य परिषद व मागाहून स्थानिक संघ इतकी आपुलकी परिषदेसंबंधी बाळगली पाहिजे. परिषदेचे सभासद होण्यांत कमीपणा मानणाऱ्या विद्वानांनी माझ्या म्हणण्याचा अवश्य विचार करून परिषदेपेक्षां स्वतांचेच मोठेपण त्यांना अधिक वाटत असल्यास आपल्यामुळे परिषद मोठी होईल या भावनेने तरी तेवढा मोठेपणा तिला लाभू देण्याचे पुण्य संपादण्याचा उदारपणा प्रकट करावा.

परिषदेची मुख्य कचेरी पुण्यास आल्यापासून परिषदेचे कार्य व्यवस्थित चालले असताही ती केवळ पुण्यास आहे म्हणून अनेकांच्या अंगांत भुत संचरलेले मधुनमधुन दिसून येते. पण असे नेहमांच चालणार. कांहीं लोकांना कोणत्याही गोष्टीविरुद्ध ओरड करण्यांतच भूषण वाटत असते. अशा भुतांच्या नाचाने भिऊन जाण्याचे किंवा त्यांच्या शब्दावर प्रतिशब्द उमटविण्याचे कारणच नाही. कार्य करीत राहणे हेच त्यांना उत्तर असते. परिषदेचे चिःणीस प्रो. देविदास दत्तात्रय वाडेकर यांनी या साली कांहीं आक्षेपांना जो उत्तर देण्याचा प्रयत्न केला त्यांत परिषदेच्या कार्यासंबंधी त्यांना वाटत असणारी तळमळ प्रतीत होत असली तरी उत्तर देण्याच्या भानगडांत ते न गुंतते तर बरे झाले असते. सांगलांचे श्री.

गोडबोले वकील व एक साहित्यिक श्री. कमतनूरकर यांच्या आक्षेपांत कांहीं अर्थच नव्हता. बडोद्याचे जोशीद्वय तर काय, 'पुणे' हा नुसता शब्द उगदारला तरी कावरेबावरे होण्याइतकें पुणेकरांचा द्वेष करण्याचे बाबतींत पराकोटीस गेले आहेत. जनरल नानासाहेब शिंदे यांनी परिषदेच्या घटनेतील कांहीं नियमानुसार व्हावयाच्या कार्य पद्धतीस 'सासुरवास' हा शब्द वापरून तिरस्कार प्रदर्शित केला आहे. पण खुद्द ज. शिंदे किंवा असाच आक्षेप घेणारे लोक जर कार्यकारी मंडळांत निवडून येतील तर अनेक अडचणींची त्यांना कल्पना होईल व मग जो सासुरवास भासला तो सासुरवास नसून प्रपंचातील ती एक शिस्त होय असे त्यांना कबूल करावे लागेल, चिटणीस श्री. वाडेकर यांनी त्यांना जे विस्तृत उत्तर दिले ते विनाकारणच होय असे मी पुन्हाही म्हणतो. परिषद पुण्यास गेल्यापासून तिचे काम सुरळीत तर चालूं झालेच, पण स्वतांच्या मालकीची जागा तिला लाभली ही या साली परिषदेच्या बाबतींत फार महत्त्वाची गोष्ट घडली आहे. आता लवकरच परिषद स्वतांच्या घरांत प्रवेश करील. स्वतांची जागा झाली म्हणजे मनुष्य जो समाधानाचा निश्वास टाकतो तो निश्वास अनेक वर्षांनी टांकण्याचे भाग्य या साली परिषदेस लाभेल ! तिच्या मागून जन्मास आलेल्या इतर भाषाभगिनींच्या प्रमुखसंस्था या पूर्वीच वरंदाज झाल्या. एवढेच नव्हे तर त्यांना प्रपंचविस्ताराचे वैभवही लाभले. आमचीच तेवढी महाराष्ट्र साहित्य परिषद अद्यापपर्यंत भाड्याचे जागेत नांदत होती. इतकेच नव्हे, कित्येक दिवस भाड्याचे जागेत राहणेही कठीण होऊन दुसऱ्याच्या मेहरबानीने कोठेतरी कानाकोपऱ्यांत कांहीं काळ तिला कंठावा लागला होता. परिषदेस स्वतांच्या मालकीची जागा व तीही पुण्यासारख्या शहरांच्या चालत्या वस्तीत मिळाली याचे श्रेय श्रीमंत बाळासाहेब पंतप्रतिनीधी यांना दिले पाहिजे.

महाराष्ट्र साहित्य संमेलने ही परिषदेच्या परवानगीने भरत असतात हे मी वर सांगितले आहे. पण परिषदेने संमेलनांची जागा व अध्यक्ष ठरविण्याचे जे नियम आखले आहेत त्यासंबंधी दरसाल नापसंती दाखविली जाते. या साली अध्यक्षांचे निवडणुकीचे बाबतीत अशी नापसंती बऱ्याच तीव्रतेने प्रगट झाली. साहित्य संमेलनाचे अध्यक्षपद श्रीमंत बाळासाहेब पंतप्रतिनिधी यांना बहाल करण्यांत आल्याने अनेकांची निराशा झाली. कारण उघड आहे की श्रीमंत बाळासाहेबांना मराठी भाषेची कळकळ असली व परिस्थितीच्या अनुकूलतेमुळे लेखकांच्या तोंडावर काहीं तुकडे सहज फेकणे त्यांना शक्य असले तरी साहित्यसंमेलनाचे अध्यक्ष निवडण्याइतकी त्यांची मान्यवर लेखक या दृष्टीने योग्यता नाही. अध्यक्षाची निवड हे जर थोर साहित्यसेवेबद्दल आदर व्यक्त करण्याचे एक प्रमुख साधन मानले तर श्रीमंत प्रतिनिधी या मानास सर्वथैव अपात्र होत यांत शंकाच नाही. पण मला वाटते की या साली संमेलनाचे अध्यक्षपद व्यवहाराकडे बघून दिले आहे अणि हे जर बरोबर असेल तर श्रीमंतांची निवड योग्य होती. आता ती अधिक खरी करून दाखविण्याचे श्रीमंतांच्या हाती आहे. त्यांनी द्रव्यप्राप्तीची योजना सुचवून स्वताचा रु. ११११ चा आंकडाही जाहीर केला. मात्र स्वताचा आंकडा जाहीर करणे म्हणजे अधिक जबाबदारीतून उपरणे झाडून मुक्त होणे असा त्याचा अर्थ न ठरो म्हणजे झाले ! या बाबतीत थोडासा खुलासा करतो. परिषदेच्या योगक्षमेची तरतूद झाली म्हणजे परिषदेसंबंधीचे कार्य संपले असे होत नाही; तर ती चांगली संपन्न झाली पाहिजे. आणि ती संपन्न होण्याकडे तूर्त आधिक दृष्टी देवणे म्हणजेच व्यवहाराकडे बघणे होय. जोपर्यंत सुसंपन्नता आली नाही तोपर्यंत केवळ तत्पनिष्ठा उराशी बाळगून

वागले तरी यश कसे येणार ? संन्यासी झाला तरी त्याला जीवित कर्तव्ये चुकतात कां ? तसेच याही बाबतीत आहे; आणि या विचाराने संमेलनाचे अध्यक्षस्थान म्हणजे ग्रंथकर्तृत्वतेबद्दल आदर व्यक्त करण्याचे साधन असे तूर्त तरी मानू नये. याबाबतीत मला दुसरी एक बाजू मांडावयाची आहे. श्रीमंत बाळासाहेब पंतप्रतिनिधी नामांकित साहित्यिक नाहीत; पण साहित्यसेवक आहेत. मी असे स्पष्ट विचारतो की साहित्यसंमेलनाचे अध्यक्षपद विद्वानांकरता आहे तसेच ते अव्वलदर्जाच्या साहित्यसेवक आणि आश्रयदात्यांकरतां का नसावे ? श्रीमंत प्रतिनिधी हे उच्च अभिरुचीचे साहित्यसेवक व आश्रयदाते आहेत. त्यांना साहित्यसंमेलनाचे अध्यक्ष निवडले यांत कांहीं चुकले नाही. मालक-मजुरांचे वादांत मजुरांचे जे स्थान तेच विद्वान व साहित्यप्रेमी आश्रयदात्यांमधे साहित्यप्रेमी आश्रयदात्यांचे असलेच पाहिजे. साहित्यसंमेलनाचे अध्यक्षस्थान केवळ विद्वानासाठीच आहे. विद्वान आणि साहित्यप्रेमी आश्रयदात्यांना ते लाभणार नाही असे म्हणणे हीहि एक प्रकारची बौद्धिक भांडवलशाही मनोवृत्तीच होय. असो, साहित्यपरिषदेची या सालांत झालेली प्रगती अभिनंदनाय आहे. आतां पुढील सालांत परिषद संपन्न झालेली दिसेल अशी आशा करूं या.

: साहित्यपरिषदेनंतर नियतकालिकांचा विचार करूं. जागृती करण्याचे व अभिरुची वाढविण्याचे कार्य हें बऱ्याच अंशी नियतकालिकांच्या हातीं असते. मराठीत नांव घेण्यासारखी ६-७ नियतकालिके आहेत. नियतकालिकांत दैनिकांचा या कामी बराच उपयोग होत असतो. विशिष्ट दृष्टीकोण हटकून बदलणे ही क्रिया करण्याचे सामर्थ्य दैनिकांत आहे. चालू सालीं दैनिकांत बरीच स्पर्धा वाढलेली दिसते. स्पर्धा ही अभिवृद्धीस पोषक होत असल्याने भिण्याचे कारण नाही. चालू सालीं मुंबईत निघणारे ' नवशक्ती ' हें दैनिक

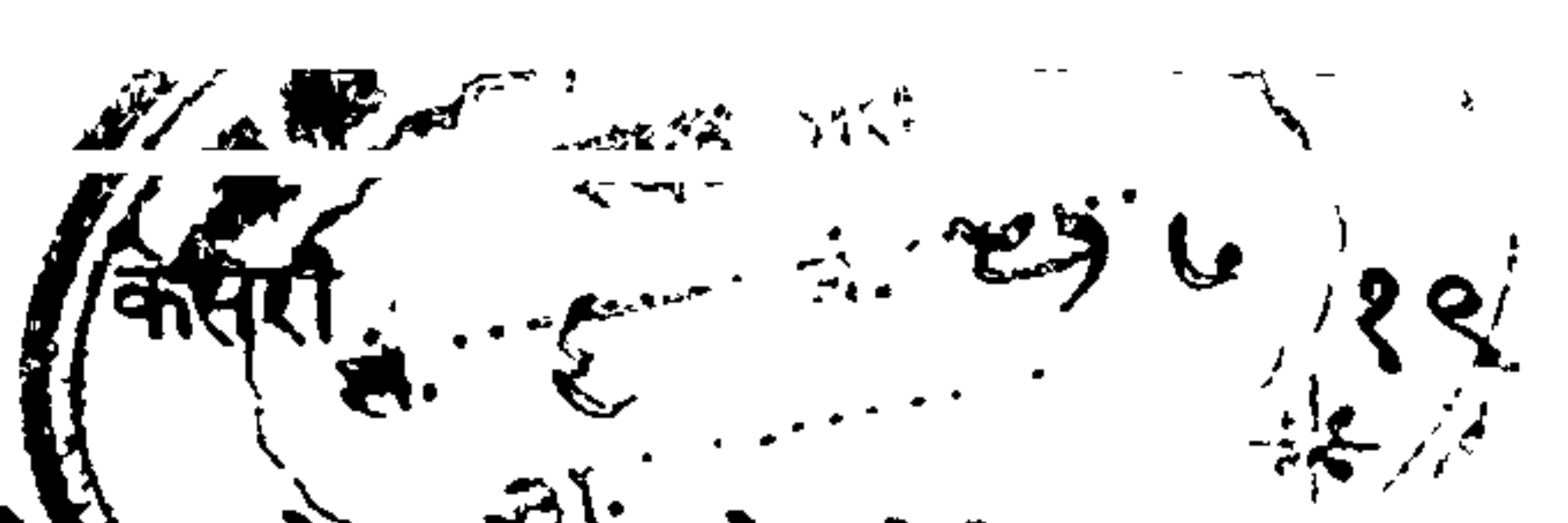
बंद पडले. या दैनिकाने एक आणखी किंमतवाल्या दैनिकास मार्ग खेचून मुंबईत तरी क्रांति केली. 'नवशक्ती' बंद झाल्यावर त्याची जागा 'लोकमान्य' या दैनिकाने घेऊन घेतली. श्री. दत्तात्रय गणेश सावरकर हे त्याचे संपादक व मालक आहेत. हे दैनिक श्री. सावरकर यांनी कौशल्याने चालविले असल्याने त्यांच्यासारख्या गरीब गृहस्थाला 'लोकमान्य' दैनिकास स्थैर्य आणता येईल असा भरंवसा वाटत आहे. या दैनिकांत मजकुरांची मांडणी असावी तितकी पद्धतशीर होत नाही. ही उणीव भरून काढण्यास पाहिजे तितकी स्वस्थता चालकांना लाभलीच नसावी असे वाटते. संपादकांचे धोरण शक्य तितका पुरस्कार करण्याचे असल्याने या दैनिकामुळे अनेकांना उत्साहाचा लाभ होत असावा. होता होईल तो खोटी व गैरसमज होण्यासारखी बातमी अथवा मजकूर आपल्या दैनिकांत येऊ न देण्याची 'ज्ञानप्रकाश' प्रमाणे श्री. सावरकरही दक्षता बाळगीत असलेले दिसतात व 'नवाकाळ' सारखा निराळा कंपूपाणा लोकमान्यांत दिसत नाही. बुद्धीभेद करण्याची व विरुद्ध पक्षासंबंधी शक्य तितके खोटे लिहिण्याची कला 'लोकमान्यां'ने अद्याप कशी अवगत केली नाही? नाही तर 'नवाकाळ' पहा. विरुद्धपक्षासंबंधी यांत प्रसिद्ध होणाऱ्या मजकुरावर विश्वास किती ठेवावा हाच प्रश्न पडतो. मात्र 'नवाकाळ'चा रेखाचित्रपणा वाखाणण्यासारखा आहे. त्याची छपाई व कागद चांगला असतो. 'नवाकाळ' दैनिकांत परराष्ट्रीय उलाढाल्यांवर प्रसिद्ध होणारे अग्रलेख इतर ठिकाणी प्रसिद्ध होणाऱ्या मजकुरापेक्षा अधिक सुसंगत व अभ्यासपूर्ण असतात. या साली या दैनिकांत ऐतिहासिक संशोधन कार्यावर जे अनेक लेख प्रसिद्ध झाले ते अत्यंत वाचनीय, मननीय आणि उद्बोधक होते. हे लेख भारत इतिहाससंशोधक मंडळाने स्वखर्चाने छापून काढावे. हे लेख श्री. नरहर रघुनाथ फाटक बी. ए. यांनी

लिहिले आहेत असें मी 'प्रतिभेत वाचले. मुंबईत निघणारे 'प्रभात' हे तिसरे दैनिक होय. हे तिसरे दैनिक म्हणजे 'आंकडा दैनिक' आहे. तरीपण या दैनिकाचें धोरण टिळक राजकारणाचा पुरस्कार करणारे असते. टिळक तत्वांचा पुरस्कार हेच दैनिक मुंबईत प्रामुख्याने करित आहे. व्यापार प्रथम व प्रपंच साधल्यास ह्या व्यवहारी धोरणावर या दैनिकाचा संसार चालला असल्याने व 'शक्य तितके थोडक्यांत मिळवणे' इकडे मालकांची दृष्टी असल्याने या दैनिकाकडून अधिक उपयुक्ततेची अपेक्षाच करूं नये. मुंबईतील 'प्रभात' इतकी गचाळ छपाई व गचाळ मजकूर दुसऱ्या कोणत्याही मराठी दैनिकांत सांपडत नाही. 'प्रभात' चें प्रकाशन पुणे येथेही या साल अखेरअखेर सुरू झाले. मुंबई व पुणे या प्रमुख शहरीं प्रकाशन करणारे 'प्रभात' हे दुसरे दैनिक होय. पुणे येथे 'प्रभात' सुरू होण्यापूर्वीपासून 'ज्ञानप्रकाश', 'सकाळ', 'त्रिकाळ' व 'तेज' ही दैनिके व्यवस्थित चालली आहेत. 'ज्ञानप्रकाश' तर महाराष्ट्राचे अत्यंत लोकप्रिय दैनिक होय. या दैनिकाबद्दल सुशिक्षित लोकांत तर फार आदर आहे. ज्ञानप्रकाशमधेच आपल्या नव-त्रेचारांस, तक्रारींस किंवा चर्चेस स्थान मिळावे अशीच बहुतेकांची इच्छा असते. पद्धतशीर मांडणी, शुद्ध भावना, सहाय्यतत्परता, धिम्पेपणा या गुणांनी 'ज्ञानप्रकाश'ने आपले महत्त्व वाढविलें असून सर्वसंग्राहक वृत्तीमुळे 'ज्ञानप्रकाश' कडून केवढी तरी समाजसेवा घडत आहे ! गेल्या सालप्रमाणेंच या सालीं राजकीय, सामाजिक व साहित्यविषयक कार्यास 'ज्ञानप्रकाश'ने जेवढी मदत केली तेवढी मदत मराठीतील सर्व दैनिकांकडून झाली नसेल. पुण्यांत निघणारे 'सकाळ' हे दुसरे दैनिक होय. या दैनिकाकडून मुंबईतील दैनिकांपेक्षा चांगले कार्य होत आहे. लोकांच्या गरजा कोणत्या व त्या कशा पुरवून घ्याव्यात यासंबंधी वेळोवेळीं मजकूर देण्याकडे

या दैनिकाचा विशेष कल असतो. मात्र 'न्यूज सेन्स' जाणणारे डॉ. ना. भि. परुळेकर हेच काय ते एकुलते एक गृहस्थ महाराष्ट्रांत असल्याने 'सकाळ' दैनिकाचा 'न्यूज सेन्स' कित्येक वेळा दुसऱ्या कोणाच्याही लक्षांत येत नाही. विक्षिप्त प्रकारच्या बातम्या पुरविणारे 'सकाळ' हे मराठीतील पहिले दैनिक होय! खुनशीपणा हा दोष 'नवाकाळ' दैनिकाकडून 'सकाळ' दैनिकाने पैदा केला असावा असे वाटते. धोरणाच्या बाबतींत तर 'सकाळ' मध्ये सूत्रबद्धता चुकूनही सापडावयाची नाही. पैठणी मोलाची खरी पण सतरा ठिकाणी डागळलेली असता ती जशी दिसावी तसे 'सकाळ दैनिक' आहे. थड धोरण नाही, एक पक्ष नाही, जबाबदारीची जाणीव नाही, त्रिनचूक बातम्या पुरविण्याकडे लक्ष देण्याची सत्रय नाही व बातमी चुकलेली कधी लक्षांत आगून दिली तर ती सुधारण्या इतका दिलदारपणा नाही. इत्यादी अनेक दोष या दैनिकांत आहेत. हणूनच मला वाटते की सुरवातीला या दैनिकाचे भोवती चांगल्या व नेणत्या लोकांचे कडे पडलेले दिसे तें आतां दिसत नाहीसे झाले आहे. पुण्यांत निघणारी दुसरी दैनिके 'तेज व 'त्रिकाळ.' सौ. शालिनीबाई तुळपुळे या बाईचा लेखनाश्रय लाभल्यामुळे 'तेज'ला मध्यंतरी खपाच्या बाबतींत तजेला आलेला दिसला. श्री नारायण महाराज केडगांवकर यांच्या संबंधी या दैनिकांत मजकूर येऊं लागल्यापासून तेजचे नांव ऐकू येऊं लागले. कामिनी सौख्य हे जितके क्षणिक तितकीच कामिनीने लाभणारी प्रसिद्धि क्षणिक असते. छिनाल नार कोणाचा तरी संसार सुखी करूं शकते काय ? त्रिस्कटलेल्या संसाराची टिपणेंटांचणें करून स्वतांची भूक भागविता येणार नाही असा माझा 'तेज' ला इषारा आहे. आणि असा इषारा देण्याचे कारण इतकेच परांगनेच्या चंचल वृत्तीचा फायदा घेणें ही वृत्तीच हीन दर्जाची होय. दैनिके असे करूं लागतील तर समाजाची अधोगती

काय दूर आहे ? मराठीचा वाचक वर्ग हलक्या मनाचा व ठिसूळ वाणीचा आहे हे नियतकालिकांनी नेहमी लक्षांत ठेविले पाहिजे. 'त्रिकाळ' दैनिक तेज व प्रभात पेक्षा चांगले निघते.

अर्ध साप्ताहिकांत 'केसरी'चा मान व दर्जा पहिल्या प्रतीचा आहे. पण केसरीला अद्याप नव्या युगाची कल्पना झाली नाही असे दिसते. काळ पळापळाने पुढे जात आहे. वाचकांची कालची रुची आज दिसत नाही, कालचे रूप आज सुलत नाही व कालचा आकर्षकपणा आज जुन्यांत मोडला जातो. अशा स्थितीत 'केसरी' पत्र मात्र आपल्या जुन्याच आवडीनिवडी उराशी बाळगून आहे. याचमुळे लोकांच्या मनावरची केसरीची पक्कड क्षणाक्षणाने कमी होत असावी. संपादक जे बोलायला व लिहायला भीतात ते केसरीच्या वाचकांना पूर्वीच कळलेले असते. त्यामुळे ताजेपणा व आकर्षकत्व कसे येणार ? वस्तुतां केसरी साप्ताहिकाचा खप एव्हांना कमीत कमी ५० हजार तरी व्हावयास पाहिजे होता. पण खपाच्या बाबतीत 'केसरी' दिवसेंदिवस कमी होत असलेला दिसतो. केसरीची भाषा भारदस्त असते व लेखन रेखीव असते. पण हा गुण बऱ्याच वर्तमानपत्रांतून अलीकडे दिसत आहे. ज्ञानप्रकाश, त्रिकाळ, विविधवृत्त, महाराष्ट्र, उदय यांचे अप्रलेख उदाहरणे म्हणून सांगावयास हरकत नाही. द्विसाप्ताहिकाचे रूप दिल्यानंतर निरनिराळे विषय कांहीं दिवस पद्धतशीर देण्यांत आले. पण अलीकडे ती घडी पुन्हां विस्कटलेली दिसते. इतर वर्तमानपत्रापेक्षा भरपूर, विविध व वाचनीय मजकूर केसरींत नसतो असे कोणीच म्हणत नाही. पण काय असेल ते असो केसरीबद्दल निदान सुधारलेल्या लोकांत तरी प्रेम राहिले नाही. दैनिकाची वाढ हे एक त्याला प्रमुख कारण आहे. वाचकांना आतां नुसत्या वाचनीय मजकुराची आवश्यकता नाही. तर हालवील जागवील



असें कांहींतरी त्यांना पाहिजे असते. केसरीने केलेली टीका वाचून फार वर्षापूर्वी श्री. सी. वाय. चिंतामणी रडल्याचे कोठेसे मी नुकतेच वाचले; पण आज केसरीने एकच काय पण वर्षभर कोणाच्या विरुद्ध कोरडे ओढले तरी कोणी रडणार तर नाहीच हुंकूनसुद्धां बघणार नाही. कारण उघड आहे; पूवा केसरी पत्र हे सर्वांनाच प्रिय असें आणि आज त्याची आवड फक्त खेड्यांतच शिष्टक उरलेला दिसते. ज्याच्यावर टीका करावयाची त्याच्या सभोवतालची परिस्थिती अशी बनली आहे की, 'केसरी'च्या बऱ्या वाईट टीकेचा परिणाम त्याच्यावर आणि त्याच्या सभोवतालच्या परिस्थितीवर होणे बरेच अशक्य दिसते. सिंह अमला तरी तो सिंहाप्रमाणें वागला तरच त्याची कोणी किंमत ठेवणार ! माझे हें म्हणणे मात्र एकतर्फी समजावे. कारण आजच्या स्थितीतही केसरी एवढा पसारा दुसऱ्या कोणत्याहि नियतकालिकाचा नाही आणि म्हणूनच लोक 'केसरी'ला वचकतात. केसरीच्या मताच्या अथवा आभिप्रायाच्या भीतीमुळे नव्हे तर त्याच्या खपा-मुळे लोक अद्यापही 'केसरी'स मान देत आहेत. केसरी पूर्व-स्थितीवर येईल असे मला आज तरी वाटत नाही. श्री. न. चिं. केळकरांसारखे धोरणी, कालज्ञ, लेखनकुशल व राजकारणधुरंधर संचालक केसरीच्या मागे उभे आहेत ही गोष्ट खरी पण बाप कर्तबगार असला तरी वयांत आलेल्या मुलांपुढें त्याची मात्रा जशी चालत नाही व दिसत असूनही आंघोळपणानें आणि कळत असूनही आज्ञापणानें त्याला वागावे लागते तद्वत्च श्री. न. चिं. केळकर यांची आज स्थिती झाला आहे. संपादक वर्गांत आज ज्यांचा भरणा आहे त्यापैकी बहुतेक लोक मागासलेल्या विचारांचे, ढोंगी, स्वार्थी व दुष्ट मनाचे आहेत ही गोष्ट मी अनेक उदाहरणें दाखवून सिद्ध करूं शकेन. 'केसरी' सारख्या संस्थेंत राहिल्यामुळे लोकसेवा

करतां येते या आकांक्षेमुल्लेखे तर सुखासीन परिस्थिती लाभली या स्वार्थी विचारानें हे सहसंपादक लुशीत असतात. स्वतांचे हेवेदावे साधण्याचे व स्वतांचे इष्टमित्र यांना जवळ करण्याचे या संपादकमंडळाचे धोरण केसरीच्या अप्रियतेस बरेंच कारणीभूत झाले आहे. मनुष्य जो जो मोठा होत जातो तो तो त्याची दृष्टीही व्यापक होत असते; संस्थेचें असेच असले पाहिजे. आणि हे ज्यांना कळत नाही त्यांच्या हातीं संस्थेचीं सूत्रें गेली म्हणजे उतरती कळा सुखें होते. आजच पहा. केसरीत इतकी कृत्रिमता दिसते कीं केसरीचे अग्रलेख जवळ जवळ ओळी मोजून लिहिलेले असतात. तब्बल दोन कॉलम भरले- कीं केसरीचा अग्रलेख व एक कॉलम भरला कीं दुय्यम अग्रलेख पूर्ण होतोच. तो वाढतही नाही किंवा कमी भरत नाही. मग विषय कोणताही का असे ना ! सर्कशीतला सिंहही जरा आगेमागे फिरतो पळतो. पण हा वृत्तपत्रांतला केसरी यंत्राप्रमाणें बोलतो. स्पष्टच सांगतो, आजकाल केसरीच्या अग्रलेखांतून हृदय दिसत नाही नाही, पोट मात्र स्पष्ट दिसते. केसरीबद्दल आदर मोठा व अपेक्षाही मोठी म्हणून लोक टीका करीत असतात व मीही जरा कडक लिहिले. काळाला अंत नसला तरी पुण्याईला मात्र अंत आहे व एकाची पुण्याई ही दुसऱ्याची कमाई झाली तरी ती किती दिवस टिकणार ? दोन तात्या वगळले तर 'केसरी'च्या संपादकमंडळांत बहुतेक शून्येच भरली आहेत.

नागपूर येथे निघणारे 'महाराष्ट्र' हे दुसरे प्रमुख अर्धसाप्ताहिक आहे. नागपूर वऱ्हाडकडे 'महाराष्ट्र'चा सातसाडेसात हजारपर्यंत खप असल्याचे ऐकतो. टिळकांच्या राजकारणाचे हे वर्तमानपत्र अभिमानी आहे. या पत्रातून बहुतेक नियमितपणे प्रसिद्ध होणाऱ्या पुस्तक परीक्षणानें साहाय्यपुरस्कारास बरीच मदत होते. मात्र हा पुरस्कार कांहीं वेळा कंपूशाहींचा जोपासना करणारा असावा असें वाटते !

या साप्ताहिकांत त्या प्रातांतील साहीत्यविषयक उलाढाली अलीकडे बऱ्याच प्रमाणांत प्रसिद्ध होऊं लागल्या आहेत. अमरावतीस निघणारे 'उदय' हे तिसरे अर्धसाप्ताहिक असून त्याचेही धोरण टिळकपक्षीय आहे. या दोन्ही वर्तमानपत्रांकडून साहित्यविषयक जागृतीस चांगलाच पाठिंबा मिळतो. 'महाराष्ट्र'ने जुने वळण सोडून जरा नाविन्य दाखवावे अशी सूचना करणे अवाजवी होणार नाही. सुसंपन्नता लाभूनही 'महाराष्ट्र' च्या रंगरूपांत व चालींत बदल होऊं नये यांचे कारण रहाणाऱ्या शिल्पकेंत तूट पडता कामा नये ह्या धोरणापलीकडे दुसरे कांहींच नसावे असा माझा तर्क आहे. आम्ही महाराष्ट्रीय लोक फायदा मिळवू लागलो म्हणजे तो जास्तीत जास्त वाढविण्याची इच्छा धरून व्यवहारशास्त्राकडे दुर्लक्ष करीत असतो. व्यवहारशास्त्र असे सांगते की फायदा टिकवायलाही खर्च आहे.

मौज हे आजचे सर्वांत जुने व भरभराटीने चाललेले मुंबईतील साप्ताहिक होय. या साप्ताहिकांत राजकारण नसते हे 'मौज' या नांवावरूनही कळण्यासारखे आहे. रंगभूमी व चित्रभूमी याविषयी व इतर अशाच अनेक विषयासंबंधी या साप्ताहिकांत बराच मजकूर येत असतो. विशेषतां हे साप्ताहिक आठवड्याच्या व महिन्याच्या भविष्याबद्दल प्रसिद्ध आहे. किंबहुना मौज म्हणजे भविष्य असाच सर्वत्र समज आहे म्हणे ना ? केसरी सोडल्यास 'मौजे' चा खपाच्या बाबतीत पहिला नंबर लागतो. मौजेकडून साहित्यापयोगी किंवा प्रबोधक असे कांहीं कार्य घडत नाही. कदाचित त्याचे ते ध्येयच नसावे. त्याबाबतीत 'विविधवृत्त' या साप्ताहिकाचे महत्त्व अधिक आहे. 'प्रागतिक' पक्षाचा पुरस्कार या पत्राकडून प्रामुख्याने होतो. या पक्षाचे मुखपत्र बनण्याची विविधवृत्ताची महत्त्वाकांक्षा आहे असे दिसते; पण 'ज्ञानप्रकाश' दैनिकामुळे हे अंतिम ध्येय या पत्राला खचित

गांठता येणार नाही. हिंदुमुसलमानांचा प्रश्न निघाला म्हणजे हे पत्र हिंदूंची न्याय बाजू अभिनिवेशाने मांडीत असते. यांत कांहीं कांहीं वेळीं महत्वाचे असे वाङ्मयविषयक लेख येत असतात. पण बहुधा कोणाला चांगले म्हणण्याची प्रवृत्ती एकंदरीत फारच कमी असल्याने विघातक कार्य करण्याचा या पत्राचा लौकिक आजकाल दुसऱ्या कोणत्याही साप्ताहिकाने मिळविलेला नाही. अशाही पत्रांची जरूरी असतेच कीं! पण एवढे कोणासही कबूल करावे लागेल कीं या वर्तमान पत्राचा दर्जा मोठा आहे. 'साप्ताहिक सकाळ'चा कल वाङ्मयविषयाकडे अधिक असलेला दिसतो, थोड्याच दिवसांत या साप्ताहिकाने चांगल्यापैकी कामगिरी केली आहे. साप्ताहिक सकाळचे खास अंक उत्कृष्ट नसले तरी बरेच उपयुक्त आहेत यांत शंका नाही. यंदा निघालेला साहित्य व शिक्षण खास अंक मात्र पूर्वीप्रमाणे निघाला नाही व अलीकडे तर मजकूर गोळा करण्यांत बरीच ढिलाई झालेली दिसते. प्रचलित राजकारणासंबंधी या साप्ताहिकांत विशेष असे कांहींच नसले तरी भरपूर मजकूर मात्र दर अंकांत असतो. या साप्ताहिकाचा खप विविधवृत्त, मौज व महाराष्ट्र यापेक्षां कमी नाही. त्रिकाळ साप्ताहिक मात्र पूर्वीसारखे नसते. 'निर्मिड' या साप्ताहिकाला राजकारणाचे वावडे आहे. या साप्ताहिकाचा महत्वाचा व अनुकरणीय गुण म्हणजे ते व्यक्तीविषयक टीकेपासून बरेच अलिप्त असते. स्वतःचे स्वतःच विडंबन करून घेणारा संपादक निर्मिडकर्त्याखेरीज महाराष्ट्रांत तरी अद्याप कोणी झालेला नाही. या साप्ताहिकांत प्रवासवर्णनपर जे दोन तीन लेख या खाली प्रसिद्ध झाले ते चांगल्यापैकी आहेत. विशेषतः सविस्तर 'रिपोर्ट' कसा व किती चुरचुरीत असावयास पाहिजे याची बरीचशी कल्पना या लेखावरून अभ्यासूना होईल. व. सावरकर यांचा

‘सात बेड्या’ हा एक उत्कृष्ट लेख या साप्ताहिकांत प्रसिद्ध झाला आहे. ‘घराबाहेर’ खास अकांत प्रि. प्रल्हाद केशव अत्रे यांचा विस्तृत ४६ कालमी लेख अत्यंत नमुनेदार आहे. त्या लेखाच्या पूर्वभाग पुन्हा पुन्हा वाचावाच वाटतो व तो एक लेखन-शैलीचाच नमुना होय. ‘वसुंधरा’ हा साप्ताहिकाचे संपादन श्री. सुंदर भुजंगराव मानकर यांच्याकडे आल्यापासून या साप्ताहिकाचे अंतर्बाह्य रूप बदलले आहे. मराठी साप्ताहिकांत कॉलेजांतील रांगरंग प्रसिद्ध करण्याचा उपक्रम प्रथम वसुंधरेनेच सुरू केला व तो अद्यापपर्यंतही चालू आहे. पण या रांगरंगांत भारदस्तपणा नसतो व त्यामुळे खेळाडू व चेष्टेखोर विद्यार्थ्यांच्या पलीकडे या मजकूराचे कोणी चहाते नसावेत. शिवाय गुरुजनांबद्दल कुचेष्टा यांत भरभूर असते. त्यामुळे नुसत्याच स्थानिक विद्यार्थ्यांत चालणाऱ्या वैशिष्ट उगदारांना सार्वजनीक स्वरूप मिळते. मला वाटते की चेष्टा असली तरी प्रेममुलक आणि आदरभावास धक्का न देईल अशी असावी. कॉलेजमध्ये एकमेकांविरुद्ध चालणारे विद्यार्थ्यांचे पोरकट खेळ प्रसिद्ध करण्यापासून कोणाचे हित होत असेल असे वाटत नाही. आणि याचमुळे कॉलेजातिल हालचाली देण्याचा उपक्रम अभिनंदनीय असला तरी त्याच्या पद्धति मात्र दूषणीय आहेत. श्री. मानकर हे एक बुद्धीमान तरुण संपादक असल्याने थोडासा जर विचार करतील तर हे वैगुण्य चटकदारपणा कायम ठेऊनही नाहीसे करणे त्यांना कठीण नाही. वसुंधरेकडून वाचकांची करमणूक होत असते. ‘विहार’ हे एक मुंबईतील साप्ताहिक असून त्यांतही मधुनमधुन चांगले लेख असतात. यंदा ‘चित्रा’ या नव्या व सुंदर साप्ताहिकाची भर पडली. चटकदार लेखनाबद्दल चित्राचे संपादक श्री. रांगणेकर हे प्रसिद्ध आहेत. त्याचप्रमाणे दुसरे संपादक श्री. काणेकर हे एक नवमतवादी लेखक असून त्यांच्या लिहीण्यांत निर्भिरपणा

व मुद्देसुद मांडणौ हे दोन चांगले गुण आढळतात. 'चित्रा' साप्ताहिकांत अनेक मनोरंजक लेख या साली प्रसिद्ध झाले. बालगंधर्वावरील रंगपटसोडून चित्रपटांत काम केल्याबद्दल जो काल्पनिक फिर्यादीच्या सुनावणीसंबंधी लेख प्रसिद्ध झाला तो खरोखरच उत्कृष्ट आहे. हा लेखही दुसऱ्या एका लेखन शैलीचा नमुना होय. 'चित्रा' इतके आकर्षक बाह्यांग व नमुनेदार छपाई दुसऱ्या कोणत्याच साप्ताहिकाची नाही.

या साली पुण्यास 'लोकशक्ती' हे द्विसाप्ताहिक सुरू झाले. प्रथम ते साप्ताहिक हांते. यांचे संपादक श्री. जावडेकर हे विद्वान आहेत. पण लोकाभिरुची व लोकांची आकांक्षा यांचे वर्तमानपत्र चालविण्यास जें ज्ञान असावयास पाहिजे तें त्यांच्याजवळ दिसत नाही. त्यामुळे ह्या द्विसाप्ताहिकांला पाहिजे तितकाही लोकाश्रय मिळाला असेल असे वाटत नाही. निव्वळ विरुद्ध पक्षासंबंधी गैरसमज पसरविणाऱ्या बातम्या व मजकूर लिहिण्याने कोणी जगेल ही कल्पनाच चुकीची होय. 'केसरी'शी बरोबरीने टक्कर घ्या-याची महत्वाकांक्षा अभिनंदनीय नाही असे कोण म्हणेल ! पण आकांक्षा आणि सिद्धी यांत महदंतर असते. यांतील मजकूर भार-दस्त भाषेत लिहिलेला असतो. व शेतकरी आणि जमीनदार, मजूर आणि मालक, ग्रामसुधारणा इत्यादि विषयांवरील लेख वाचनीय असतात. मधूनमधून वाङ्मयविषयक लेखही प्रसिद्ध होतात. नागपूर-कडे 'स्वच्छंद' या नावाचे एक साप्ताहिक सुरू झाले आहे. चटक-कारपणा व स्पष्ट विचारसरणी हे स्वच्छंदाचे प्रमुख गुण होत. या साप्ताहिकाचा वाङ्मयाकडे बराच ओढा आहे. साहित्यप्रांतांतील व्यक्तीसंबंधी यांतील मजकूर एकदांतरी दृष्टीखालून अवश्य घालावा. या साप्ताहिकांत अधिक गांभिर्य आणण्याचा प्रयत्न होईल आणि राजकारण विषयाला अधिक प्रामुख्य मिळेल तर 'स्वच्छंद' लोकां-

दरास अधिक पात्र होईल, या पत्रावरून नागपूरकडील साहित्यिकांची भांडणे कळून येतात. 'प्रेक्षक' हे मुंबईतील साप्ताहिक पूर्वी सिनेमा विषयाला अग्रस्थान देत असे. यावर्षी या साप्ताहिकाने अंतर्बाह्य आपले रूप बदलले असून त्यांत विविध मजकूर येत असतो. मुंबईत मात्र त्यामुळे सिनेमाविषयक माहिती देणारे एकही साप्ताहिक आतां शिल्लक राहिले नाही. 'सिनेमा' नांवाचे एक साप्ताहिक रूडूखुडू चालले होते ते बंद पडले. 'वैभव' साप्ताहिकाचा अस्तोदयही ५-६ महिन्यांतच झाला. पुण्यास निघणारे 'किरण' आणि कोल्हापुरास निघणारी 'सिनेमा सृष्टी' हीच काय ती मराठीतील सिनेमाविषयक नियतकालिके होत. 'किरण' मध्ये प्रसिद्ध होणारे कांहीं लेख खचित चुरचुरीत असतात. गुजराथी व हिंदी भाषांतून प्रसिद्ध होणाऱ्या सिनेमाविषयक नियतकालिकांच्या मानाने मराठीत नियतकालिके मुळीच नाहीत असे म्हटले तरी चालेल. याच साली 'प्रमोद' या नांवाचे एक साप्ताहिक मुंबईत प्रसिद्ध होऊ लागले. यांचे संपादक श्री. खंडेराव त्रिलोकेकर ह्यांची लिहीण्याची पद्धत बरीच आकर्षक आहे. या साप्ताहिकांतून बरेच वाचनीय लेख येत असतात. संपादक जरा सनातनी मताचे असले तरी नव्यामताचे ते द्वेषे नाहीत. या पत्राने थंदा 'किलोस्कर-त्रिलोकेकर' वाद काढला. त्याच्यासंबंधी माहिती पुढे येईलच. विपुल मजकूर व चांगली छपाई यामुळे हे साप्ताहिक बरेच खपते.

मराठीत जिल्हावर निघणाऱ्या साप्ताहिकांची मात्र अजून सुधारणा होत नाही. जिल्हांतील हालचाली प्रमुखपणे देणे हे जिल्हापत्रांचे मुख्य ध्येय असावयास पाहिजे. आज आमची जिल्हापत्रे स्वतांला प्रमुख प्रांतिक पत्रे साजतात किंवा काय कळत नाही ! जिल्हांतून चालणाऱ्या राजकारणाला कांहीं महत्व असते याची त्यांना कल्पनाच नसावी. त्यामुळे असे होते की जिल्हांतील लोकांकडून त्यांना

फारसा आश्रय मिळत नाही. ग्रामसुधारणेचे जितके महत्व आहे तितकेंच जिल्हापत्रसुधारणेचे आज महत्व आहे. जिल्हापत्रे जर सुधारतील तर लोकांतील चळवळ व उत्साह यापेक्षांहि वाढेल. सावंतवाडीचे 'वैतनय' रत्नागिरीचे 'बळवंत' धुळ्याचे 'प्रबोध' जळगांवचे 'प्रागतिक' अकोल्याचे 'मातृभूमी' सातारचे 'ऐक्य' आणि 'स्वधर्म' बेळगांवचे 'तरुणभारत' कोल्हापुरचे 'विद्याविलास' सांगलीचे 'दक्षिण महाराष्ट्र' पेणचे 'कुलावासमाचार' इत्यादी साप्ताहिके त्यांतल्या त्यांत बऱ्यापैकी आहेत. त्यांनी विशेष मेहनत घेऊन अंक काढावयाचे ठरविल्यास कठीण जाणार नाही. आभेरुची उत्पन्न करण्यासाठी दैनिके ज्या तंत्राचे सहाय्य घेतात तीच तंत्रे जिल्हापत्रांनी आत्मसात केली पाहिजेत. 'सत्यवादी' 'ऐक्य' इत्यादी कांहीं पत्रांना जिल्हापत्रे अशी संभावना केल्यामुळे राग येण्याचा संभव आहे. 'सत्यवादी' पत्र तर दक्षिण महाराष्ट्राचे प्रमुख साप्ताहिक असेच स्वतांला म्हणण्यांत असते. निरनिराळे खास अंक काढून या साप्ताहिकानें बरीच हालचाल यासाली केली. पण या साप्ताहिकानें दक्षिण महाराष्ट्राचे प्रमुख साप्ताहिक होण्याइतकें कांहीं कार्य केले आहे व त्यादृष्टीने या साप्ताहिकांत विशेष कांहीं असते असे मला आढळले नाही. संस्थानांत असल्यामुळे नको त्या गोष्टी करावया लागत असतील किंवा हव्या त्या गोष्टी करतांही येत नसतील असेही असण्याचा संभव दिसतो. जिल्हातील बातमीदारे सविस्तरपणे जिल्हापत्रांतून येतील तर दुसरे वर्तमानपत्र घेऊनसुद्धां या पत्रांचा खप आहे त्याच्या तिपटचौपट तरी वाढावयास हरकत पडूं नये. या गुणांच्या अभावामुळेच दैनिकांतून मजकूर आणविण्याकडे जिल्हांतील कार्यकर्त्यांचा ओढा असतो. तो थांबवता आला नाही तरी निदान स्वतांकडे पूर्णपणे आकर्षिता येईल. आमची जिल्हापत्रे सुधारतील तर चळवळ मग ती कोणत्याही प्रकारची असो, यापेक्षां अधिक संघटित

चालेल. खेड्यांच्या सुधारणेस जिल्हापत्रांचा आधिक उपयोग होणार आहे. वर नमूद केलेल्या साप्ताहिकाखेरीजही कांहीं साप्ताहिके चालू आहेत. कांहीं नवी निघाली व कांहीं बंदही पडली. निदान त्यांचे प्रकाशन लक्षांत भरण्यासारखे तरी नाही.

या साप्ताहिकानंतर ' पाक्षिकांकडे ' वळल्यास मराठींत दर पंधरा दिवसांनी प्रसिद्ध होणारी अशी प्रमुख दोनच पाक्षिके आहेत. एक संजीवनी आणि दुसरे प्रतिभा. ' संजीवनी ' हे पाक्षिक महिला समाजाच्या उन्नतिसाठीं म्हणून निघत असते. या पाक्षिकाचे संपादक व मालक श्री. प्रभाकर श्रीपाद कोल्हटकर बी. ए. हे विशेष मेहनत घेत असून या पाक्षिकास अद्याप जगण्यापुरताही आश्रय महाराष्ट्रांतील महिलासमाजानें देऊ नये याचें आश्चर्य वाटते. सुशिक्षित स्त्रिया कमालीचे औदासिन्य दाखवित आहेत हें तर खरेंच शिवाय आकर्षकतेचा अभाव हा या पाक्षिकाचा मोठाच दोष होय. निरनिराळ्या पाक्षिके आणि मासिके गिऱ्हाइकांची मर्जी संपादन करण्यासाठीं मेहनत घेत असताना ' संजीवनी ' चे रूप सन १८८० सालातील कोंकणदेशीप्रमाणें दिसते. नटण्यामुरडण्याचे बाबतींत पुरुषापेक्षां स्त्रिया आजकाल पुढें सरसावेलेल्या आपण पहातो; मग स्त्रियांसाठीं म्हणून निघालेल्या संजीवनीनें तो गुण आत्मसात कां करूं नये ? कोल्हटकर यांची घस सोसून महिलासमाजाची सेवा करण्याची तळमळ वाखाणण्यासारखी असली तरी नुसती तळमळ यश देऊ शकत नाहीं असे व्यवहार बोलतो. ' संजीवनी ' पाक्षिकांतील लेख महिलासमाजाविषयीं विविध माहिती देणारे असतात. शिवाय ' वायुपुत्र ' या टोपण नांवाच्या लेखकाचा ' आकाशवाणी ' या सदराखालीं प्रसिद्ध होणारा मजकूर मार्मिक तर खराच शिवाय गमतीदार असल्यानें वाङ्मयाचे दृष्टीनेंही त्या मजकुरास महत्व आहे. केवळ वर्तमानपत्रीं लिखाणापेक्षां ही ' आका-

शवाणी ' कितीतरी वरच्या दर्जाची वाटते. 'संजीवनी' ची रहाणी जर अदयावत् होईल तरच तिच्याकडे कोणी पाहाल अशी तिला माझी सूचना आहे. 'संजीवनी' तून प्रसिद्ध होणाऱ्या काव्यांतकी मधुर प्रणयगाते दुसऱ्या कोणत्याच नियतकालिकांतून आढळत नाहीत आणि ती बहुतेक तरुणींनीच लिहिलेली असतात हा विशेष होय.

दुसरे ' प्रतिभा ' हें पाक्षिक साहित्यविषयक असून या विषयाचे तरी ते मराठातील प्रमुख नियतकालिक होय. या वर्षी या पाक्षिकाने केलेले कार्य गेल्या सालप्रमाणेच महत्त्वाचे आहे. विशेषतां ' रामशास्त्री ' या टोपण नांवाने जो लेखक या मासिकांतून चर्चा करतो त्याची स्फुटे विद्वत्ताप्रचुर, मार्मिक, चिकित्सक, निर्भिड आणि निःपक्षपाती असतात. मात्र पुस्तकपरीक्षणांकडे या पाक्षिकाने अधिक लक्ष दिले पाहिजे. पुस्तकपरीक्षणांकडे न्यायनिष्ठुरपणे पहावयाचे ठरविल्यास प्रतिभेच्या संपादकांची प्रियता कमी होईल हे खरे असले तरी लेखकांच्या घुश्यांकडे वेपवाईने बघण्याइतके भाग्य त्यांना लाभले आहे. त्यामुळे ग्रंथकारांच्या रागलोभाची त्यांनी तरी पर्वा करूं नये. बाळ्यांतील कांही साहित्यकांची टाळकी कंपूशाहीच्या कैफाने विथरली असता प्रतिभेने त्यांना उतारा देण्याचे कार्य या वर्षी केलेच की नाही ? प्रतिभेतून या साली अनेक वाचनीय लेख प्रसिद्ध झाले आहेत. वर्षाच्या अखेरीस प्रसिद्ध झालेली लेखक व लेख यांची यादी पाहिली म्हणजे प्रतिभेच्या कार्याची कल्पना येईल. काव्याचे बाबतीत संपादक कठोर असावेत असे वाटते मला स्वतःला मात्र हें धोरण पसंत आहे. ' विविधज्ञान विस्तार ' मासिकाचे कार्य पूर्वीप्रमाणे जोमाने नसले तरी चालू आहे ही समाधानाची गोष्ट होय. अनियमितपणा हा दोष अधापीही नाहीसा झाला नाही. ' विविधज्ञानविस्तार ' हे

अवल दजांचे भारदस्त मासिक आहे. एका काळ असा होता की आपले लेख विस्तारतूनच प्रसिद्ध व्हावे असा विद्वानांचा आग्रह असे. अलिकडे ते प्रेम विद्वानांच्या मनांत राहिले नाही. विशेषतः एका कंपूच्या हाती या मासिकाची सूत्रे गेल्यामुळे तर इतरांना या मासिकापासून दूर रहावे असे वाटणे साहाजिकच होय.

श्री. नारायण रामचंद्र मोरे यांची 'नवजीवन' आणि 'सुवर्ण' ही दोन मासिके चाळ सार्शी घरांदाज झाली असे म्हणावयास हरकत नाही. होतकळ लेखकांस उत्तेजन देण्याचे कार्य या दोन्ही मासिकांकडून चांगले होते. या मासिकांतील कविता बऱ्याच चांगल्या असतात. होतकळ लेखकांवर नाणावलेल्या लेखकांचे लेखसुद्धा या मासिकांतून प्रसिद्ध होतात. किलोकरांची मासिके जितकी वाचली जातात तितकी दुसरी मासिके वाचली जात नाहीत. 'किलोस्कर' मासिकाने स्वपाच्या बाबतीत मिळविलेले यश कितीतरी वाखाणण्यासारखे आहे. यांत प्रसिद्ध होणारे लेख व गोष्टी सर्वतोमुखी होतात. प्रो. ना. सी. फडके या नामांकित लेखकाचे बरेच लेख या मासिकांतूनच गेल्या सार्शी प्रसिद्ध झाले आहेत. या मासिकांतून प्रसिद्ध होणाऱ्या बहुतेक गोष्टी कलेच्या दृष्टीने बऱ्याच हलक्या असल्या तरी अनेक लेखकांची प्रसिद्धीची भूक या मासिकाकडून भागविधी जाते. सामाजिक अन्यायाविरुद्ध या मासिकांतून प्रसिद्ध होणारे लेख मात्र बहुतेक विवाहविषयक नीती पुरतेच असतात. कोणाचे तरी चरित्र व प्रेमविषयक गोष्टींचा भरणा या मासिकांतून भरपूर असतो. डॉ. वासुदेवराय किलोस्करांनी लिहिले आहेत तसे किंवा श्री. दिवेकर व व. सावरकर यांनी लिहिले आहेत तसे लेख आजच्यापेक्षा अविक्र प्रमाणांत आले पाहिजेत. शिवाय 'किलोस्कर' मासिकांतून तरी व्यापार व तद्विषयक महत्वाकांक्षा वाढविण्याच्या वाङ्मयास अधिक स्थान द्यावे अशी

बहुतेकांची अपेक्षा आहे. कोणत्या तरुणीने कोणत्या तरुणावर कसे प्रेम करावे किंवा हृदयाची भूक भागविण्यासाठी काय काय उपाय योजावेत या विषयापेक्षां औद्योगिक विषयाचे महत्व आजकाल अधिक आहे. किलोस्कर मासिक म्हणजे लैंगिक विषयाचे मासिक नाही. या विषयीं बरीच चर्चा पूर्वी झाली आहे पण कोणी काय करावे व कसे असावे हे प्रतोद घेऊन सांगण्याचा कोणाला अधिकार नाही तोपर्यंत अशा टीकांकडे लक्ष देण्याची आवश्यकता टीका-विषयक व्यक्तीला कां भासावी ? पण ते सोडून दिले तरी किलोस्कर कंपनीकडून आजकाल मराठी वाचकांची गोष्टी वाचण्याची आवड बरीच पुरविली जात आहे यांत शंका नाही. 'मनोहर' मासिक आणि 'किलोस्कर' मासिक यामध्ये पृष्ठांच्या संख्येपलीकडे फारसे अंतर नाही. स्त्री मासिकाविषयीही तसेच म्हणावे लागते. 'स्त्री' हे महिलांसाठी मासिक काढले; पण महिलांच्या गुणदोषांची चर्चा करणारे व त्यांच्या सुधारणेस उपयोगी पडेल असे वाङ्मय या मासिकांतून कितीसे प्रसिद्ध होते ? 'स्त्री' पेक्षां मग 'संजीवनी' पाक्षिक अधिक बरे. शिवाय अलिकडे मला असे वाटू लागले आहे कीं स्त्रियांसाठी मासिके किंवा पाक्षिके काढणे हे स्त्रीसमाज मागसलेला आहे याचा फायदा घेण्यासारखे होय. त्यांच्या नांवावर स्वतांचा व्यापार करण्यासारखे हे दिसते. स्त्रियांसाठी स्वतंत्र मासिक पाहिजे काय हे संपादकांनी एकदा स्त्रियांनाच विचारून पहावे. सह-शिक्षणाच्या अभिमान्यांकडून तरां नियतकालिकांतील या सवऱ्या सुभ्याचा तिरस्कारच केला होईल. 'स्त्री' मासिकांत अनेक लेखिकांचे लेख प्रसिद्ध होतात पण त्या गोष्टी अगर लेख इतर दोन मासिकांतील गोष्टींहून कितीशा भिन्न स्वरूपाच्या अगर धोरणाच्या असतात ? तात्पर्य 'स्त्री' हे स्त्रियांचे मासिक आहे ही केवळ दिशाभूल होय. स्वयंपाकांतील एक दोन जिन्नसांच्या कृतींची माहिती

दिली म्हणजे स्त्रीमासिक उपयुक्त झाले अशी संपादकांखेरीज कोणाची समजूत असेल असें दिसत नाही. थोडक्यांत सांगावयाचे तर 'मनोहर' 'स्त्री' व 'किलोस्कर' या मासिकांतून प्रसिद्ध होणारे साहित्य बहुतेक अशा स्वरूपाचे असते कीं 'किलोस्कर' मासिकाचा मजकूर 'मनोहर' मासिकाचा म्हणून छापला काय, 'मनोहर' मासिकाचा मजकूर 'स्त्री' मासिकाचा म्हणून छापला काय आणि 'स्त्री' मासिकाचा मजकूर 'किलोस्कर' मासिकाचा म्हणून छापला काय, ग्राहकांना कांहीं चुकले असे वाटणार नाही इतका या तिन्ही मासिकांत सारखेपणा आहे.

या तिन्ही मासिकांच्या मुखपृष्ठावर तीन रंगी चित्रे घालण्यांत येतात व मनोहर मासिकांत आधिक चित्र दर महिन्यांस देण्यांत येते. पण या मासिकांतून देण्यांत येणारी तीनरंगीं चित्रे ही चित्रकलेची निवळ थडा होय असा स्पष्ट अभिप्राय एका प्रख्यात चित्रकारानें दिला आहे. दरमहा तीन वेळा तीन रंगात होत असलेले चित्रकलेचे हे विडंबन संपादक थांबवतील तर चित्रकलेवर त्यांचे खचित उपकार होणार आहेत, या तीन मासिकांपैकीं किलोस्कर मासिकांतून उपासनीबुवाविरुद्ध आलेल्या लेखानें या सालीं समाजांत बरीच खळबळ उडाली. लघुकथांचे बाबतींत जे स्पष्ट उद्गार वर नोंदले ते केवळ 'किलोस्कर' मासिकांपुरतेच आहेत असें नव्हे तर बहुतेक सर्वत्रच तसा प्रकार दिसून येतो.

श्री. सातवळेकर यांचे 'पुरुषार्थ' मासिक एका विशिष्ट धोरणानें आपले कार्य करीत आहे. त्याचे धार्मिक कार्य कांहीं कमी महत्वाचे नव्हे ! पण 'पुरुषार्थ' हें केवळ पेन्शरांचे मासिक होऊन बसले आहे असें कां याचा संपादकांनीं अवश्य विचार करावा. 'यशवंत' मासिक यापुढें पूर्वत निघेल अशी आशा वाटू लागली आहे. या मासिकाचे जे अंक निघाले ते पूर्वीपेक्षां पृष्ठसंखेने मोठे आहेत.

आजच्या लघुकथा वाङ्मयाच्या जोरांत प्रसार करण्यास प्रथम 'यशवंत' मासिकानेंच सुरवात केली. व्यवहाराचा अडचणी आडव्या आल्या नसल्या तर या मासिकाचा प्रसार आजही कितीतरी झालेला दिसता. नुकत्याच निघालेल्या 'यशवंत' मासिकाचे अंकांत श्री. शामराव ओक यांनी लिहिलेला प्रवासवर्णन एक नमुनेदार लेख आहे व शक्य असेल त्याने तो अवश्य वाचता. प्रवासवर्णन लिहिण्याची ही पद्धत अभिनंदनीय होय. याच अंकांतील श्री. सोपानदेव चौधरी यांच्या 'काव्य केतकी' या पुस्तकावरील टीका निर्भिड आहे. स्पष्ट परीक्षण केल्याबद्दल लेखकाची स्तुति केली पाहिजे. पण या परीक्षणांत व्यक्तीविषयक निंदेचा जां दुर्गंध येतो तो लेखकानें टाळावयास पाहिजे होता. चार आणे माला आणि आठ आणे माला यांचे प्रकाशनही अद्याप व्यवस्थित होत नाही.

एकीकडे असतांही नागपूर येथें निघणाऱ्या 'उद्यम' या मासिकाची जेवढी स्तुति करावी तितकी थोडीच होय. निदान आजच्या काळांत तरी असें म्हटलें पाहिजे. औद्योगिक विषयाला वाहिलेले 'उद्यम' हेच एक महत्त्वाचे असे मासिक आहे. या मासिकानें आपले प्रकाशन व्यवस्थित चालू ठेऊन इतरांना उत्कृष्ट उदाहरण घातले आहे. महाराष्ट्रीय लोकांचे दिवसेंदिवस व्यापाराकडे लक्ष जात असल्याने अशा मासिकांची त्यांना जरूरी आहे. श्री. का. म. ताम्हणकर यांचे 'प्राविण्य' मासिक या वर्षी जरा मार्गे आलेले दिसते. या मासिकातही औद्योगिक विषयासंबंधी बराच मजकूर येत असतो. रावसाहेब नारायण गोविंद चाफेकर यांचा सावकार व कुळें यासंबंधीचा लेख वाचनीय आहे. त्याचप्रमाणें एका लेखकाने 'आदर्श खेड्या'ची मांडलेली कल्पनाही चटकदार आहे. इतर विषयांचा परामर्ष घेण्याचे धोरण संपादकांनीं सोडून स्वतांला मर्यादा घालून घेतली तर यापेक्षाही अधिक वाचनीय मजकूर 'प्राविण्या'

ला देतां येईल. श्री. ताम्हणकर यांना 'वाजारा' चे ज्ञान बरेच आहे असे म्हणतात. त्याचा फायदा त्यांनी 'प्राविण्या'स देण्याचा निश्चय करून पहावा. 'भोळा शेतकरी' हे मासिक अगदी अव्यवस्थित कां होईना चालू आहे. या मासिकाच्या कमालीच्या अव्यवस्थितपणाकडे दुर्लक्ष देण्याचे कारण इतकेच कां त्यांतील विषय असे असतात कां या मासिकास अर्धपोटी जगण्या इतकेही ग्राहक मिळणे मुष्कीलीचे होय. या मासिकांत सहकारी पतपेढ्यांसंबंधी व शेतकरी आणि सावकार यांच्या विषयीच मजकूर प्रसिद्ध होत असतो. मराठींत केवळ असा मजकूर देणारे हेच मासिक माझ्या वाचण्यांत येत असते. महाराष्ट्र चेंबर ऑफ कॉमर्स या व्यापाऱ्यांच्या संस्थेतर्फे प्रसिद्ध होणारी 'मासिक पत्रिका' चांगली निघत असते. यांतील व्यापारविषयक लेख व्यापाऱ्यांना मार्गदर्शक होत असतात असा व्यापारी लोकांचा अभिप्राय आहे. 'व्यापारी जगत्' या नांवाचे एक मासिक पुणे येथे सुरु झाले.

जग बदलेले पण 'चित्रमयजगत्' मात्र अद्याप आहे तसेच आहे. या मासिकांत भरपूर वाचनीय मजकूर आणि तोही विविधरूपाचा असतो. माई बरेकर या कुमारिकेने चालविलेले 'महिला' मासिक यासाठी बरेच अनियमित निघू लागले. या मासिकाने कोणतेच उपयुक्त कार्य आतांपर्यंत केले नाही. यासाठी काहीं नवी मासिके निघाली! त्यापैकी 'सह्याद्री' या मासिकाचा प्रथम उल्लेख केला पाहिजे. 'सह्याद्री'ने जुन्या 'रत्नाकर' मासिकासही मागे टाकले आहे. यांत प्रसिद्ध होणारे विविध लेख तितके अभ्यासपूर्वक लिहिलेले उद्बोधक असतात तितके ते 'लोकशिक्षण' आणि 'विविधज्ञान-विसार' या मासिकाखेरीज क्वचितच आढळतील. खरे म्हणावयाचे तर सह्याद्रीचे महत्त्व वाङ्मयविषयक लेखांचे दृष्टीनेही 'प्रतिभे'पेक्षा अधिक आहे. सुंदर छपाई, पद्धतशीर मांडणी व प्रसंगोपात्त

विषयांची निवड हे आणखी इतरत्र न दिसणारे तीन गुण 'सह्याद्री'त आहेत. 'सह्याद्री'ने नमुनेदार मासिकाची मराठीतील उणीव भरून काढली आहे. 'मॉडर्न रेव्यू' या मासिकाच्या अगदी तोडीचे हे मासिक आहे यांत शंकाच नाही. उणीव असलीच तर एका तरुणीने दोन तरुणावर एकाच वेळी प्रेम करावे किंवा नाही अशासारख्या आजकाल सर्वत्र बोकाळलेल्या विषयाचीच असेल ! वाचकवर्गाने या मासिकास चांगलाच आश्रय दिला आहे. पहिल्याच वर्षांत चार पांच हजार वर्गणीदार मिळणारे 'सह्याद्री' हेच मराठीतील पहिले मासिक होय. या मासिकाचे संचालकत्व श्री. न. चिं. केळकर यांच्या-सारख्या साहित्यसम्राटाकडे असल्याने व 'केसरी' सारखी संपन्न संस्था मार्गे असल्याने 'सह्याद्री' मासिक इतके नमुनेदार निघाले नसते तरच आश्चर्य ! मात्र श्री. न. चिं. केळकर यांनी 'संपादक' या शब्दाचे 'सह्याद्री'चे संचालक होऊन विडंबन केले आहे. 'लोक-शिक्षण' या एका नामवंत मासिकाचे कांहीं अंक यासाठी प्रसिद्ध झाले. हे मासिक लिमिटेड कंपनीतर्फे प्रसिद्ध होत असते. भारदस्त विषयामुळे या मासिकास कितीसे ग्राहक लाभतील याची मात्र शंका वाटते. 'विधिज्ञानविस्तार' 'सह्याद्री' आणि 'प्रतिभा' ह्या तीन नियतकालिकांपुढे 'लोकशिक्षणा'चा प्रकाश लोकाना दिसेल असे वाटत नाही. तोटा सोसण्याची कंपनीची जोंपर्यंत हिंमत असेल तोंपर्यंत हे मासिक निघेल. मासिकाचा प्रसार फारच कमी असल्यामुळे अशा मासिकांतून चांगले लेख प्रसिद्ध करणे म्हणजे एक प्रकारे कालाचा व बुद्धीचा अपव्ययच होय. ह्या मासिकांत शेवटी परराष्ट्रीय राजकारणाची जी माहिती येते ती अनुकरणीय आहे. आमचे लेखक, संपादक व वाचक यांना परराष्ट्रीय राजकारणाचे मासिकापुरते तरी महत्व वाटत नसावे असे दिसते.

मुंबईचे सुप्रसिद्ध प्रकाशक दामोदर सांवळाराम आणि मंडळी यांनी 'ज्ञानमंदिर' मासिक सुरू केले. थोडक्या किमतीत भरपूर मजकूर देणारे हे मासिक आहे. संपादकांचा ओढा राजाश्रय मिळविण्याकडे असतो; पण व्यवहारापुरते या धोरणाकडे दुर्लक्ष केले तरी किमतीच्या मानाने यांतील मजकूर फार असतो. या मासिकाचा खप सहा सात हजारपर्यंत आहे असे म्हणतात. यांत विविधविषय येत असतात पण एकंदर स्वरूप असमाधानकारक आहे. 'महाराष्ट्र शारदा' मासिक ठीक चालले आहे. पणजा येथे 'कला' या नावाचे एक मासिक या साली निघाले. आटोपशीर आकार व गोड छपाई यामुळे याचा अंक डोळ्यांत भरतो. लेखही छोटेसे आणि चांगले असतात. आतांपर्यंत या मासिकाचे आठ अंक प्रसिद्ध झाले आहेत. 'कलादर्श' हे जळगांवचे मासिक बंदच झाले. 'वाग्विलास' या नावाचे एक मासिक मुंबईस सुरू झाले होते तेहि बंदच पडलेले दिसते. 'पारिजात' या नावाचे एक चांगल्यापैकी मासिक यासाला बंद झाले. ह्या मासिकाकडून चांगले कार्य होईल अशी माझी अपेक्षा होती. मासिक बंद करण्याची कारणे या मासिकाच्या चालकांनी हिशेबासुद्धां प्रसिद्ध केली तर इतरांना त्यापासून बोध घेता येईल. या मासिकाचे संपादक श्री. रामंत हे लेखक आहेत त्यांनी याचा विचार करावा. उमरावतीस गेल्यासाली निघालेल्या 'विकास' या मासिकाचीहि तीच रड. मागच्या समालोचनांत मी असे स्पष्ट लिहिले होते की, हे मासिक नागपूरकडे निघालेल्या मासिकाचीहि बरोबरी करू शकणार नाही व बरोबरीची भाषा मागेच पडून मासिकच बंद झाले. वस्तुतः असे व्हावयास नको होते. 'विहंगम' हे श्री. पाठकांचे मासिक पहिल्यासारखे राहिले नाही. पाठकांच्या संकल्पनाप्रमाणे खरोखरच दहा हजार रुपये संपले काय? 'विश्ववाणी'ने दुसरा घोवा केल्यापासून तिचे सुरळीत चालले आहे. 'वागेश्वरी'

मासिक बंदच पडलें असावें. 'नवमत' या नांवाचें एक मासिक श्री. मा. कृ. शिंदे यांनीं मुंबईस सुखं केलें व त्याचें या सालांत तीन अंक प्रसिद्ध झाले. मासिक नियमित निघेल तर 'नवमताला' चांगला आश्रय मिळेल असें वाटतें. मात्र पहिल्याच अंकाच्या मुखपृष्ठावर वाणेरेडें चित्र छापून द्याड अभिरुचीचा आरोप श्री. शिंदे यांनीं स्वतःवर निष्कारण ओढवून घेतला ! त्यांच्या लेखणींत चुरचुरीतपणा असतो. वाचन आणि मनन करण्याची जर ते सत्रय लावून घेतील तर या गुणाचा कांहीं प्रकाश पडेल. 'नाटक' या नांवाचें एक मासिक श्री. निफाडकर यांनीं नाशिक येथें सुखं केलें पण या मासिकाचें स्वरूप व आजची परिस्थिति विचारांत घेतां हें मासिक फार दिवस चालणें शक्यच नव्हतें. 'वाङ्मय' या नांवाचें कांहीं वर्षे चाललेलें मासिकहि निघत नाहींसें झालें आहे.

'तत्त्वज्ञान मंदिर' 'महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका' वगैरे कांहीं त्रैमासिके प्रसिद्ध होतान. 'साहित्य पत्रिका' महाराष्ट्र साहित्य परिषदेचे मुखपत्र होय. पैसे आहेत पण वक्तशरिरपणा कसा तो या पत्रिकेला नाहींच. भारतइतिहाससंशोधक मंडळाचे त्रैमासिक, शिवाय धुळ्यास निघणारे राजवाडे संशोधन मंडळाचे नियतकालिक आणि रामदास-रामदासी हे मासिक पूर्वीप्रमाणें ठराविक पद्धतीनें निघत आहे. जातिविषयक मासिके, पाक्षिके व त्रैमासिकेही कांहीं कमी नाहींत. 'प्रभुप्रभात' हे अशा मासिकांत एक बरेंच चांगल्या पैकीं निघणारे मासिक आहे. जातिविषयक विविध माहिती व चळवळी यांची हकीगत नियमनीतपणें देण्याकडे ह्या मासिकाचे प्रथम लक्ष असते. तेंच 'प्रभुतरुण' हें पाक्षिक पहा. दोन्ही नियतकालिके एकाच समाजाची पण दोघांच्या धोरणांत व उपयुक्ततेच्याहि दृष्टीनें जमीन अस्मानचे अंतर ! प्रि. खाड्ये यांच्या संचालकत्वाखालीं यंदा 'आदर्शवैश्य' या नांवाचे एक मासिक सुखं झाले. यांत

महाभारतावर प्रि. खाड्ये यांनी एक लेखमाला सुरू केली आहे. ही लेखमाला विद्वत्ता, उपयुक्तता व चिंतना या दृष्टीने किती योग्यतेची आहे हे ती पुरी झाल्याखेरीज सांगता येणार नाही. पण अशी लेखमाला प्रसिद्ध करण्याचे 'आदर्शवैश्य' मासिक हे मात्र स्थान नव्हे. 'आदर्शवैश्य' हे जातिविषयक माहिती देण्याकरता निघालेले समाजाचे मासिक होय आणि त्यांत येणारे लेख मासिकाच्या ध्येयाला साजेल असेच असले पाहिजेत.

स्वतंत्रपणे नमुद करण्यासारखी गोष्ट म्हणजे प्रो. काळे या प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय अर्थशास्त्रज्ञांनी चालू साली 'अर्थ' या नांवाचे साप्ताहिक सुरू केले. आपल्याकडे बहुतेक ठिकाणी असे दिसून येते की ज्याचा जो विषय नसतो त्या विषयाची देवघेव व चर्चा करण्याची आमच्यांत फार दुष्ट खोड आहे. सिनेमाशास्त्राचे ज्याला ज्ञान नाही तो सिनेमाविषयक मासिक काढतो, ज्याला दोन ओळीसुद्धा लिहितां येत नाहीत तो संपादक बनतो, राजकारणाचे ज्याचे वाचन नाही तो राजकारणाचे साप्ताहिक सुरू करतो व ज्याला नर्सिंग किंवा वैद्यकी यांची थोडीसुद्धा माहिती नसते तो प्रसूतीशास्त्र व स्त्रियांचे रोग यांची माहिती देणारे मासिक काढतो. 'जननी' या नांवाचे निघणारे पुण्याचेच मासिक पहा. त्यामुळे होते काय, संपादकांना दुसऱ्याचे पाय धरावे लागतात व वेळीं मिळेल तो मजकूर छपावा लागतो ! अशी बहुतेक ठिकाणी स्थिति दिसून येत असल्याने योग्य माणसाने स्वतांला कळणाऱ्या विषयाचे साप्ताहिक सुरू करणे ही आपल्याकडे क्वचितच घडणारी गोष्ट पुण्यास घडून आली म्हणूनच 'अर्थ' हे साप्ताहिक प्रो. काळे यांनी सुरू केले. याबद्दल त्यांचे अभिनंदन केले पाहिजे.

'मन्वन्तर' या नांवाचे एक आणामालेच्या धर्तीवर मासिक पुणे येथे हनुमान प्रिंटिंग प्रेसने सुरू केले आहे. नियतपणे

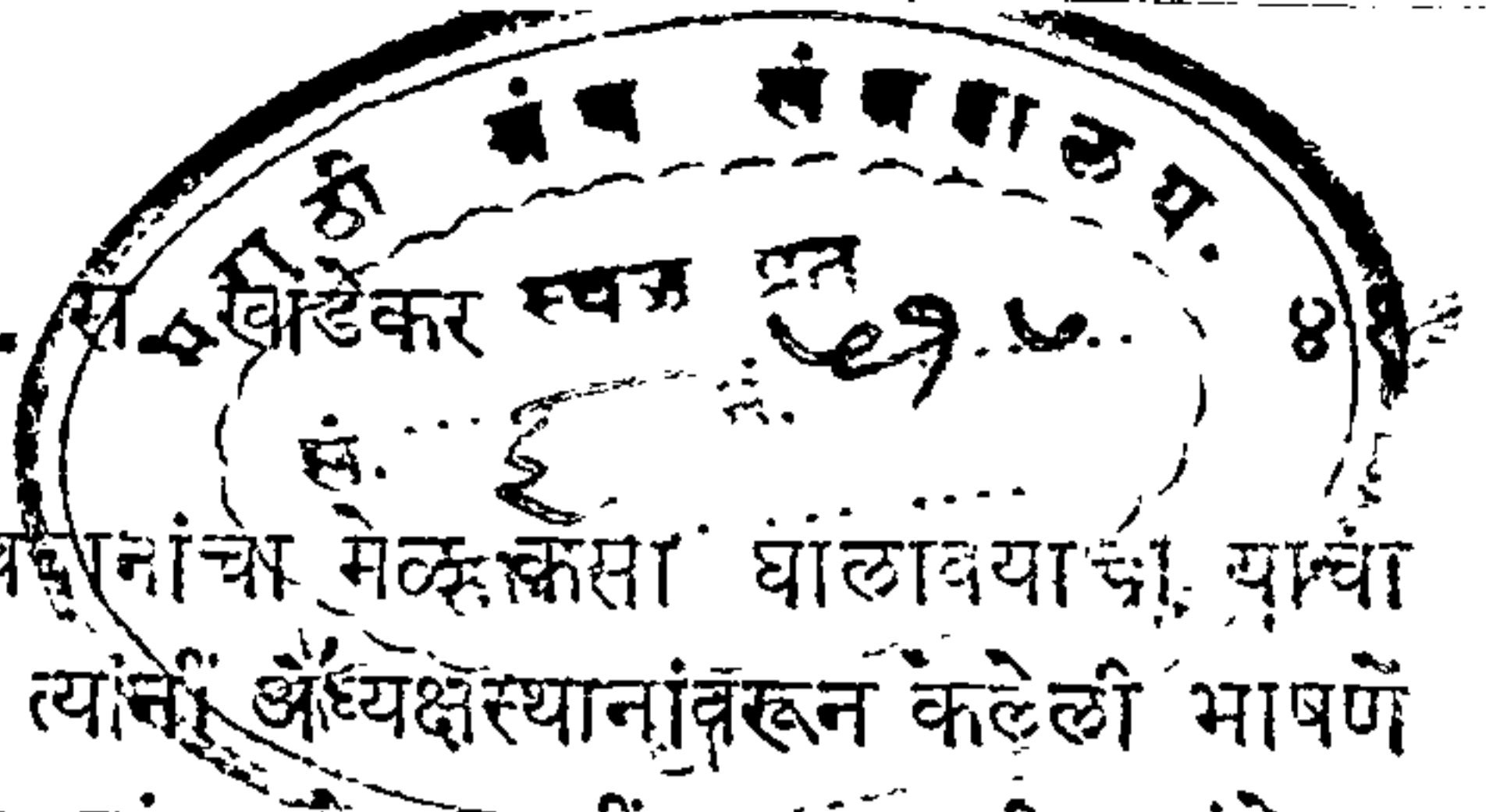
या मासिकानें राखल्यमुळें व मजकूरही विविध असल्यामुळें मासिकाचा खप आहे ह्यापेक्षां वाढेल अशी कल्पना आहे. पण मजकूर मात्र अधिक वाचनाय देण्याची सेय चालक करतील तर बरें होईल. 'ध्रुव' या नांवाचें एक मासिक चित्रशाळाप्रेसनें या सालीं सुखं केले. हें मासिक बरेंच वाचनीय असते. किलोस्करांच्या 'मनोहर' मासिकापेक्षां या मासिकांत अधिक वाचनीय मजकूर असतो. साहित्यकांचा परिचय या सदराखालीं येणाऱ्या मजकूराचा प्रमुखपणें उल्लेख केला पाहिजे. विशिष्ट विषयक नियत कालिकेंही निघत असतात. त्यांत मुंबईचे प्रख्यात वैद्य आप्पाशास्त्री सठे यांचे मासिक चांगले चालले आहे. शिवाय 'समाजस्वास्थ्य', 'भविष्य भास्कर', 'भविष्य', 'भारतीय संगीत', 'व्यायाम' इत्यादि नियतकालिके आहेतच. खानामुर्चे 'लोकमित्र', जळगांवचें 'काव्यरत्नावली', मासिक इत्यादि जुनी किंवा भुसावळचे 'पूर्वेदु' यांच्यासारखी शेंडा बुडखानसलेली मासिके निघत असतात. या खेरीज आणखी काहीं मासिकें सुखं झाली व पूर्वीचीं काहीं बंद पडली. या मासिकाबद्दल लिहिण्यासारखे असें काहीं विशेष नाहीं. काहीं शळांची व कॉलेजांची त्रैमासिके व षण्मासिके आपआपल्या रांतीप्रमाणें आपल्यापुरते कार्य करत आहेतच.

जातिविषयक, विविधविषयक, विशिष्टविषयक, प्रांतीक व जिल्हानिहाय असे अनेक भेद नियतकालिकांत आहेत. विशिष्ट मत प्रातेपादन करणाऱ्या नियतकालिकांत सातारचे 'हंस' आणि पुण्याचे 'भाला' इत्यादि पत्रांचा समावेश होतो. पैकीं 'भाला' प्रसिद्ध होणे हे त्याच्या चालकांच्या फुरसतीवर अवलंबून आहे. पत्राचे प्रसिद्धकरण चालकांच्या फुरसतीवर अवलंबून रहातें ही गोष्ट बहुधा मराठींतच पचली जात असावी. एका चालकानें तर आपण चांगपूर कलकत्याकडे जात असल्यामुळें पुढील अंक बंद ठेवला

आहे असे धडधडीत जाहीर केले ! सांगावयाचा हेतू इतकाच की, यावरून आमच्याकडील नियतकालिकांचे चालकसंपादक आपल्यावरील जबाबदारीची काय किंमत ठेवतात हे दिसून येत नाही काय ? एक दुसऱ्याची नकल करू पाहतो. पण त्या नकलेबरोबर स्वतांचे असे कांहीं असेल तर ती नकल टिकते. उसनवारी तर आमच्या वाङ्मयांत भरपूर बोकालळी आहे. 'ज्ञानप्रकाश'मध्ये संध्याकाळी प्रसिद्ध होणाऱ्या बातम्या इतर दैनिके उघडउघड उद्धृत करतात. स्वतांचे श्रम व पैसा खर्च करण्याकडे आमची मनोवृत्तीच दिसत नाही. श्रम आणि पैसा यांच्या अभावी चोरी करण्यास प्रवृत्त झालेला माणूस आणि बातम्या छापणारा संपादक एका दृष्टीने दोघेही सारखेच होत. निदान उसवारीबदल नामनिर्देश करण्याइतकीही कृतज्ञता हे लोक दाखवीत नाही याचे आश्चर्य वाटते ! आमची दैनिके पूर्वीपेक्षा चांगली चालतात हे खरे असले तरी त्यापैकी बहुतेक बरीच मागासलेली आहेत. पण घडत आहे तेही विशेष होय असे मी मानतो. स्पर्धा असावी पण दुसऱ्याला मारण्यासाठी असू नये आणि स्पर्धा करावी ती दुसऱ्याचे उणे काढण्यासाठी करू नये. दैनिके काय, मासिके काय किंवा साप्ताहिके काय यांनी हे लक्षांत ठेवावे की दुसऱ्यात नाही ते आपल्यात कांहीं विशिष्ट आहे असे त्यांना सांगतां आले पाहिजे. वाङ्मयाचे व काय पण सर्वच बाबतींत राष्ट्राची उन्नति व्हावयास नियतकालिके हेच मोठे साधन होय. भविष्यकाळाची दारी नियतकालिके चालविणाऱ्या लोकांच्या हातांत आहे. ही जबाबदारी आमचे संपादक जर ओळखतील तर सोन्याहून पिवळे होईल.

नियतकालिकांची वाङ्मयाच्या वाढीस जशी प्रत्यक्ष मदत होते तशीच सम्मेलनांची मदत होत असते. गेल्या तीनचार वर्षांत प्रांतिक सम्मेलनें भरू लागली आहेत. पण शिरत आणि नियमितपणा

यांचा अभाव अद्याप दिसून येतो. यंदा प्रांतिक अशीं तीनच प्रमुख सम्मेलने झालीं. एक मडगांव येथे भरलेले गोवे प्रांतिक साहित्यसम्मेलन, दुसरें पुणे येथील शारदा मंदिरातर्फे भरलेलें सम्मेलन व तिसरें दादर येथे भरलेलें मुंबई साहित्य सम्मेलन. याबाबतीत विशेष नमूद करण्यासारखी गोष्ट अशी कीं या तिन्ही सम्मेलनांचे अध्यक्षपद श्री. वि. स. खांडेकर यांनाच लाभले. मडगांव येथील अध्यक्षीय स्थानावरून त्यांनीं जें भाषण केलें तें इतर ठिकाणच्या अध्यक्षीय भाषणापेक्षां अधिक उद्बोधक, विचारपरिप्लुत आणि चटकदार झालें. पुणे येथील भाषणासंबंधीं प्रतिभेत जी टीका आली ती कोण चुकीची म्हणेल ! मडगांव येथील भाषणाची कांहीं पानेच पुणे येथे त्यांनीं वाचून दाखविलीं असा आक्षेप अगदींच उपेक्षणीय नाही. कला व जीवन आणि कला व नीती या संबंधीं त्यांची अनिश्चित मनोवृत्ती मुंबई येथील भाषणांत बरीच स्थिरावली. अध्यक्षीय भाषण म्हणजे एक उत्कृष्ट निबंध वाचणें असाच समज रूढ झालेला दिसतो. त्यामुळे श्री. खांडेकर यांनीं आपल्या तिन्ही भाषणांत आंग्ल व रशियन लेखकांचा उद्धार केला आहे. आपल्या समोर बसलेले श्रोते हे विद्वान व बहुश्रुत आहेत असें समजून हा उद्धार योग्यच ठरेल, पण दुर्दैवानें तशी वस्तुस्थिती नाही. त्यामुळे असलीं भाषणें चार विद्वानांना पसंती पडतात; बहुजन समाजास ती बऱ्याच प्रमाणांत कळतहि नसावीत. बरे विद्वानांना तरी मान्य होतील असें म्हणावें तर तेंहि कठोणच दिसतें. कारण विद्वानांत बहुधा एक वाक्यता दिसत नाही. खुद्द खांडेकर यांच्या भाषणांत तरी एकवाक्यता कोठे आहे ! पुणे येथे भाषण करतांना त्यांनीं एकदां स्वच्छ सांगून टाकलें कीं, मागणी तसा पुरवठा करणें लेखकाला भाग पडते. उलट मडगांव येथील अध्यक्षीय भाषणांत ते असें म्हणतात कीं प्रेमगीते आणि प्रेमकथा खपतात म्हणून लिहाव्यात यांत काय



अर्थ आहे ? ” या दोन्ही विद्वानांचा मेळूकसा घालावयाचा. यांचा वाचकांनीच विचार करावा! त्यांनी अध्यक्षस्थानावरून केलेली भाषणे एकंदरीत चांगल्यापैकी आहेत यांत शंका नाही. पण श्री. खांडेकर यांनी बरेंच लिहिले असले आणि बरीच भाषणे केली असली तरी मतांचा ठामपणा त्यांच्यात अजून यावयाचा आहे. असें बोलू का तसें बोलू ही अडचण अजून त्यांच्या पुढे येते. समाजसत्तावादो लोकांच्या मेढ्यांत ते असले की कला आणि जीवन या वादांत जीवनाची बाजू मांडतील. आणि जरा अधिक रसिक व हौशी लोकांच्या कड्यांत ते सापडले की नीतीचा मुरड घालून वां होईना केलेची पाठराखण करतील. श्री. खांडेकर यांच्या भाषणांत विवेचकपणा असतो हे खरे. पण त्यांत धरसोड अधिक. त्यांतूनही मनुष्य एकदा लोकप्रियतेच्या मार्गे लागला म्हणजे त्यांच्या अंगी आलेल्या मोठेपणाची तो उधळपट्टी करतांना पुढचा मागचा विचारही करित नाही. मराठीचे वाचक वेडे आहेत असे मी म्हणत नाही व म्हणू तरी कसे ? पण एवढे खरे की मराठीत जसे विद्वान व व्यासंगी लेखक नाहीत तसे वाङ्मयाचे अव्वल दर्जाचे परीक्षकही नाहीत असें माझे ठाम मत झाले आहे; विशेषतां ललितवाङ्मयाला महत्व आल्यापासून इतर कांहीं साहित्य वाचले पाहिजे यांची ललितवाङ्मयाच्या उपासकांना कल्पनाच नाही की काय ? कोटी आणि उपमा यांच्या मार्गे लागलेल्या लेखकांकडून चिरंतन स्वरूपाचे म्हणजे कोणत्याही काळीं समाधान देणारे वाङ्मय निर्माण होणें कठीण आहे. श्री. वि. स. खांडेकर यांची लोकप्रियता पहातां खरे आणि स्पष्ट सागादयाचे तर त्यांच्या योग्यतेपेक्षा ती त्यांना अधिक मिळाली आहे; मात्र याबद्दल कोणी हेवादावा न करतां त्यांना अधिक उत्साह उत्पन्न होईल असेंच बोललेचाले पाहिजे. आणि म्हणूनच उगवत्या सूर्याच्या मार्गे लागणाऱ्या समाजाला संभेदनाचे अध्यक्षपक्ष श्री. वि.

स. खांडेकर यांना देण्यांत नेहमीच्या रीतीविरुद्ध कांहींच झाले नाही. असें असतांही संमेलनाचे अध्यक्षस्थान जर थोर वाङ्मयसेवे-
 षदल कृतज्ञता आणि आदर व्यक्त करण्याचे साधन मानले तर श्री. खांडेकर यांच्यापेक्षां अधिक विद्वान साहित्यकांची निवड व्हावयास पाहिजे होती, माझे हें मत कित्येकांना कडक वाटेल हे मला नमुद केलेच पाहिजे; पण आजकाल साहित्यप्रांतातही कसें थारे वाहतात हे कळवावयास या सार्थी श्री. खांडेकर यांची तीन संमेलनाचे अध्यक्ष म्हणून झालेली निवड हें एक उत्तम साधन होय. महाराष्ट्राचें म्हणून असे इंदूर येथे जे मुख्य संमेलन झाले त्या संमेलनाच्या अध्यक्षाचे निवडणूकोसंबंधीं मी मार्गे लिहीलेच आहे. मुंबई येथें अध्यक्ष निवडणूकीचे बाबतींत जो विलक्षण वाद माजला तोही डोळ्यांआड करून चालणार नाही. मुंबईचे वर्तमानपत्रांचे मोठे व्यापारी श्री. विठ्ठलराव बागवे यांचें नांव सुचवून जो पोरखेळ सजविण्यांत आला तसा प्रकार यापूर्वीं झाल्यांचे तरी माझ्या वाचनांत नाही. बेजबाबदार लोकांच्या साहाय्यावर कार्ये करायची म्हटली म्हणजे त्या कार्याला पोरखेळाचे स्वरूप यावयाचेच ! मुंबई संमेलनाचे बाबतींत तर डॉ. भालेराव, श्री. वर्दे वगैरे चारपांच लोकां-
 खेरीज बहुतेक लोक स्वतांच्याच प्रतिष्ठेच्या मार्गे लागलेले दिसून आले. केले कीं आम्ही संमेलन अशी फुशारकी मारवयास सांपडली म्हणजे झाले त्यांचे समाधान ! रावसाहेब मुकुंदराव पाटील यांचे नांव सुचवून श्री. भास्करराव जाधव यांनीं स्वतांचे हसें करून घेतले. साहित्यसंमेलनाचे अध्यक्षस्थान म्हणजे कौन्सिलनिवडणूकीची सभा असें श्री. भास्करराव जाधव समजत होते कीं काय नकळे ! कोठे मुकुंदराव पाटील आणि कोठें सरदेसाईखांडेकर ! पण जाती-
 वर गेल नाहीत तर भास्करराव जाधव कसले ! आज भिरवावयास सांपडलें ना उद्याचे उद्यां पहाता येईल ही मनोवृत्ती कार्यक-

त्याला शोभत नाही. मुंबईतील संमेलनाचे बाबतीत तर हा दोष कमालीचा दिसून आला. साहित्य म्हणजे काय व साहित्यविषयक परिस्थिती कशी आहे याचे ज्यांना ज्ञान नाही, ज्यांचे वाचन नाही, मराठीत लेखक कोण आहेत, विचार प्रवाह कसे व्हात आहेत यांची ज्यांना कल्पना नाही व आज साहित्यसंमेलन, उद्या अस्पृशांचे संमेलन, परवा नटांचे संमेलन, यानंतर राजबद्यांचे संमेलन अशा जे उड्या मारतात म्हणजे ज्यांच्यात कार्यनिष्ठा नाही असे बाजारबुणगे लोक साहित्य-प्रांतांतही शिखर लागलेले दितात. आणि हे सर्व पाहिले म्हणजे मला असा इषारा घावासा वाटतो की, अशा संमेलनांपासून निदान ग्रंथकारांनी तरी दोन पात्रले दूरच रहावे. मुंबईस काय किंवा इंदूर येथे काय जो प्रकार घडला त्यावरून मी अशा विचाराचा वनलो आहे. आजची संमेलने म्हणजे ग्रंथकारांची संमेलने नव्हेत ! मुंबई साहित्यसंमेलनांत सुसंगतपणा नव्हता, ठरावांत पद्धतशीरपणा नव्हता व वक्त्यांत मुद्देसूदपणा नव्हता. सरकारचा निषेध कारणे एवढेच ज्यांचे कार्य अशा उठवळानीं मुंबई साहित्य संमेलन घेरले आणि त्यामुळेच संमेलनांत बहुतेक प्रतिष्ठित साहित्यप्रेमी व प्रसिद्ध लेखक हजर हि राहिले नाहीत. तसाच बहुतेक प्रकार इंदूर येथे घडला. साहित्य संमेलन आणि परिषद यांच्यातील वाद विकोपास जाऊन परिषदेतील प्रमुख कार्यकर्त्यांनी संमेलनावर बहिष्कार घालावयास कमी केले नाही. इंदूरचे या सालचे संमेलन म्हणजे निव्वळ बजबजपुरी होती. प्रतिनिधीचा अधिकार गाजविण्याची हुकूमती या सालां कांही उनाड-टप्पूना इतकी आली की संमेलनाचा चुथडा झाला. परिषद म्हणजे साहित्यसंमेलनाची कार्यकारी कमेटी ठरविली जाणार आहे असे म्हणतात ! याचा अर्थ असा की परिषदेकडून आज जे कांही कार्य थोडेबहुत होते तेही करण्यासाठी यानंतर कोणा पुढे येणार नाही.

परिषदेची घटना संमेलनांनै मंजूर करावी म्हणजे परिषद पूर्ण प्रातिनिधिक होते हे खरें असले तरी परिषदेला संमेलनांचे बंधन घालण्यांत आल्यास मोठी अनवस्था प्राप्त होईल. कीर्ती किंवा पैसा याचा लोभ असल्याखेरीज कोणी सहसा कार्यासाठी सदोदित पुढें येत नसतो. परिषदेच्या कार्यांत पैशाची प्राप्ती नाही आणि कीर्तीची आशाही नाही ! मग संमेलनांची बंधने स्वीकारून कोण पुढें येणार ? शिवाय साहित्य कार्य म्हणजे राजकारण नव्हे. साहित्यसंमेलन आणि परिषद यांचा हा तंटा असाच चालविण्यापेक्षां दोघांची फारकत होईल तर अधिक भलेपणा आहे. फार तर संमेलन बोलाविण्याचा अधिकार परिषदेकडे असावा. संमेलनांच्या कार्यांत परिषदेनें मुळींच ढवळाढवळ करूं नये. संमेलन एकादे सालीं भरत नसल्यास तेवढ्यापुरते परिषदेनें पुढें व्हावे. संमेलनांत खंड पडू नये यासाठीच एवढें तरी अधिकार परिषदेनें स्वाधीन ठेविले पाहिजेत. साहित्यसंमेलनाच्या अध्यक्षपदासंबंधीं परिषदेची ढवळाढवळ अनेकांना आवडत नाही. या व्यवस्थेमुळे त्याही वादाचा आपोआपच निकाल लागेल.

मुंबईच्या साहित्यसंमेलनाचे बाबतींत आज नाही उद्यां परिषदेप्रमाणेंच तंटे माजणार असा माझा तर्क आहे. मुंबईसाहित्यसंमेलनें दरसाल भरविण्यासाठीं एक संघ निर्माण करण्यांत आला आहे. प्रश्न असा कीं मुंबई साहित्यसंमेलनांनै कांहीं ठराव मंजूर केले तर त्या प्रमाणें या संघानें वागले पाहिजे किंवा नाही? संघाचे चालक संमेलनाची बंधने मान्य करावयास तयार होणें कठीण दिसतें. समजा, उद्यां राजकारणांतून हांकळून लावलेल्या कांहीं उठवळ लोकानीं संमेलनांत कांहीं ठराव मताधिक्याच्या जोरावर मंजूर करून घेतले आणि ते संघाच्या प्रातिनिधिक स्वरूपाला धोका आणण्यासारखे असले तर संघ एकपक्षीय वनेल. आणि साहित्यकार्य हे असे आहे कीं ते पूर्णपणें पक्षभेदांतीत असावयास पाहिजे. इंदूर आणि

मुंबई येथील संमेलनांवरून मला असंखी वाटू लागले की राजकारणांतून बेकार झालेले लोक आपले नांव वर्तमानपत्रांतून यात्रे म्हणून जोरजोराने प्रयत्न करीत असावेत. निदान आजच्या स्थितीत तरी अशा लोकांपासून सावध असले पाहिजे. हिंदुस्थानांतील राजकीय परिस्थितीमुळे कांहीं विचार बोलून दाखवितां येत नाहींत हें खरें. पण ही परिस्थिती संमेलनांत निषेधाचे ठराव आणून कां बदलणार आहे ? यासाठीं संमेलनाबाहेरच चळवळ झाली पाहिजे आणि तशी चळवळ करण्याची कोणी खटपट केली तर संमेलनांतून व साहित्य-विषयक कार्यांतून पुढारपणा घेणारे बहुतेक लोक त्यांतही अवश्य भाग घेतील. ज्या ठरावांना साहित्यसंमेलनांतून मज्जाव व्हावा असे जे कोणी लोक म्हणतात तेच लोक संमेलनाबाहेर दुसरी सभा भरविल्यांस तेच ठराव स्वतां पुढे मांडतील.

साहित्यसंमेलनास यापेक्षां आधिक व्यवस्थित स्वरूप येऊन बद्धतशीर कार्य होईल तरच अशा संमेलनामुळे साहित्यविषयक चळवळीस प्रत्यक्ष मदत घडेल. ठराव करण्यांतही आतां कांहीं सुमार राहिला नाहीं. शक्य काय, अशक्य काय, शक्य असतांही अडचणी काय आहेत याचा विचार न करतां बरेच ठराव मंजूर करण्यांत येतात. कार्य करणारी संस्था असली म्हणजे त्या संस्थेंतर्फे म्हणून जे ठराव मांडले जातील त्यांना आधिक महत्त्व आहे. मुंबई येथे संमेलनाने जे ठराव पास केले ते बहुतेक या आक्षेपांपासून अलिप्त नाहींत.

संमेलनाबरोबर पोटसंमेलनें भरविण्याची प्रथा कोल्हापुर संमेलनापासून सुरू झाली. पण अशा व्यवस्थेमुळे एकापेक्षां अनेक लोकांचा सत्कार करतां येत असला तरी बरीच गैरव्यवस्था माजते. एक ना वड भारभर चिंध्या अशातला प्रकार होतो. मोठ्यांचे अनुकरण चांगले असले तरी ते करण्याची कुवत पाहिजे. ओरिएंटल कॉन्फ-

रन्समध्ये पोटसंमेलने भरतात म्हणून मराठी साहित्यसंमेलनां तसे करावे यांत तूर्त अर्थ नाही. इंदूरच्या संमेलनांत त्यामुळेही गैरव्यवस्थेस मदत झाली.

महाराष्ट्रसाहित्य संमेलनांत ठराव मंजुर व्हावेत हे साहजिकच आहे पण प्रांतिक संमेलनातून ठरावांची अडगळ नसावी. एकदा दुसरा असलाच तर तो निव्वळ प्रांतिकस्वरूपाचा असावा. प्रांतिक संमेलनांनी अशी सुधारणा केली तर बरे होईल. पुण्यास भरणारे संमेलन सर्वांत नमुनेदार असते. तेथील कार्यपद्धति अनुकरणीय आहे. ठराव करण्यांत येत नाहीत ही मुख्य गोष्ट होय. एकादा विषय वादविवादासाठी निवडण्यांत येतो व चर्चेसाठी ठेवलेल्या विषयासंबंधी ज्यांना गोडी असते असे विवेचक चर्चा करतात. त्यावेळीं होणारी विद्वत्ताप्रचुर भाषणे, मुद्देसुद चर्चा विषयाच्या उलटसुलट बाजू ऐकून वक्ते आणि श्रोते यांना जो आनंद वाटतो तो और खरा. पुण्याच्या संमेलनासाठी वर्गणी नसते त्याच प्रमाणे स्वागतमंडळ आणि स्वागतोपचाराचें तंत्र याची आवश्यकताही ठेवलेली नसते. खाजगी निमंत्रणे नसतात. वर्तमान-पत्रांतून प्रसिद्ध होणारे जाहीर आमंत्रण हेच खासगी आमंत्रण समजून सर्व साहित्यप्रेमी व विद्वान संमेलनास हजर रहातात. त्यामुळे मला निमंत्रण नाही अशा तक्रारी होत नाहीत. प्रांतिक संमेलने याच स्वरूपाची असावीत.

यंदा इंदूर येथील साहित्य संमेलनांत काव्यगायनाच्या कार्यक्रमांस मज्जाव करण्यांत आला. झाले हे एकाअर्थी काहीं वाईट झाले नाही ! कविवर्ग रागावल्याचे वाचले. पण कवि रागावले तर काय करतील हो ? दोन चार अधिक कविता खरडतील एवढेच ! काव्यांनी गांजलेल्या लोकानां अधिक पैदासीनें काहीं नवी जग्नम होणार नाही ! पण काव्यगायनाला अजिबात मनाई करण्याचें धारण

मात्र अभिनंदनीय नव्हते. स्वतंत्र कार्यक्रम जरी ठेवता आला नाही तरी अधिवेशनांत मधूनमधून काव्य गायनास स्थान देण्याने श्रोत्यांची कामणूक झाली नसती काय ? आणि शेवटी तसेच करावे लागले आहे. आजकाल होणारे काव्यगायनाचे कार्यक्रम पाहिले म्हणजे ते होऊ नयेत असे वाटते हे खरे. पण त्यांची कारणे मात्र वेगळी आहेत आणि ती शोधून नाहीशी करण्याचा प्रयत्न संमेलनाच्या चालकानीं करावयास पाहिजे होता. याबाबतींत ज्ञानप्रकाशने कवि गिरीश यांचे पत्र छापले आहे ते पहाता श्री. गिरीश यांनी आपल्या इतर बंधूंची शिस्तीचे नावावर जीं अवहेलना केली ती न्यायाला धरून दिसत नाही. आजकाल गायककवि कोण आहेत याची महाराष्ट्रांतील श्रोत्यांना चांगली कल्पना आहे. अशा नाणावलेल्या काव्यगायकांचा जरी कार्यक्रम ठेवला असता तरी बरे झाले असते. बाहेर गायक म्हणून कीर्ती मिळवावी आणि त्याचे कौतुक संमेलनाने खास निमंत्रण देऊन करावे अशी जर प्रथा सुद्धा होईल तर गायनकार्यामधील दोष नाहास होतिल. असा उपक्रम झाला तर संमेलनाचे निमंत्रण हा एक सन्मान समजण्याची प्रथा पडेल. इंदूरकरांची ही चूक जळगांव येथे सुधारली जाईल अशी अपेक्षा आहे.

इंदूर येथील मुख्य संमेलन आणि तीन प्रांतिक संमेलने मिळून चार साहित्यसंमेलने झाली हे बरे सांगितलेच आहे. नाशिक व नगर मिळून साहित्यसंमेलने भरत असत. गेल्या साली नामांकित लेखक व वक्ते ह.भ.प. लक्ष्मणराव पांगारकर यांच्या अध्यक्षतेखाली संमेलन भरले होते. पण यंदा मात्र भरविण्यांत आले नाही. नाशिक-नगर मिळून संमेलन भरविण्याची कल्पना चांगली होती व कांहीं वर्षे अशी संमेलने भरली. यंदाच काय अडचण आली ते समजत नाही. नगर येथील साहित्यसंघांत चांगले लोक आहेत. संघाकडून मधूनमधून सभा, प्रकाशन वगैरे कार्ये चालू असतात. मग संमेलनासूच

का फाटा देण्यांत आला? येत्या सालीं तरी संमेलन भरविण्यांत यात्रे, पुण्यास आग्रिहोत्र मंदिरांत गेल्यासालीं श्री. शंकरराव राजवाडे यांच्या पुरस्कारानें वाङ्मयपरिषद झाली. यंदा तीही भरली नाहीं. अहिताग्नी राजवाडे आणि त्यांचे स्नेही यांचा उत्साह एकच वर्षापुरता ठरावयास नको होता. पण गेल्या सालीं वाङ्मयपरिषदेनें ठराव करून संस्कृतिसंरक्षकमंडळ नेमले होते. त्या मंडळाचे श्री. कृष्णराव मराठे हे अव्वर्यु आहे. या मंडळानें त्यांना वाटणाऱ्या अश्लील व संस्कृतिविध्वंसक वाङ्मयाचा वेळोवेळी निषेध करण्याचे मात्र कार्य केले आहे. वाचकांसाठीं मंडळाच्या कामाचा थोडक्यांत अहवाल देतो. मंडळानें पुढील लिखाणांचा निषेध केला. १ श्री. रांगणेकर यांची 'सीमोलंघन' कादंबरी व त्या कादंबरीचे प्रस्तावनेंत श्री. वरेकर यांनीं सीतादेवीचे चारित्र्यावर उडविलेला शितोडा. २ 'कला' मासिकानें सुखं केलेला नीती अनीतीचा प्रश्न. ३ 'वाग्त्रिला'स मासिकांतील 'तिचे पाय' हा लेख ४ श्री. पंडित यांचे 'सामाजिक सीमोलंघन' नाटक ५ वसंत मासिकांतील 'आदर्श भ्रष्टता' हा लेख ६ श्री. फाटकशास्त्री यांचे 'घर जावई' नाटक ७ नवमत मासिकावरील मुखपृष्ठावर दिलेले चित्र ८ प्रो. फडके यांच्या 'उद्धार' कादंबरीतील अनैतिक भाग ९ कवि मनमोहन यांनीं लिहिलेली 'मूर्तिभंजन' ही कविता १० 'नटीचे आत्मवृत्त' ही कादंबरी ११ तेजपत्रांतील 'विसकटलेला संसार' ही कादंबरी १२ 'विलासी ईश्वर' हा सिनेमा. मंडळानें पुढील गोष्टींचे अभिनंदन केले.

कोल्हापुर इलाखा भगिनीमंडळाची सभा होऊन कुलीन स्त्रियांनीं सिनेमांत कामें केल्याबद्दल निषेध करणारा ठराव पास केला त्याबद्दल त्या मंडळाचें अभिनंदन २ मिरज जैन महिला परिषदेंत कुलीन स्त्रियांनीं रंगभूमिवर कामें करूं नयेत असा ठराव पास केला त्याबद्दल अभिनंदन ३ श्री. कवीश्वर यांचे 'नीती व कलोपासना' हें

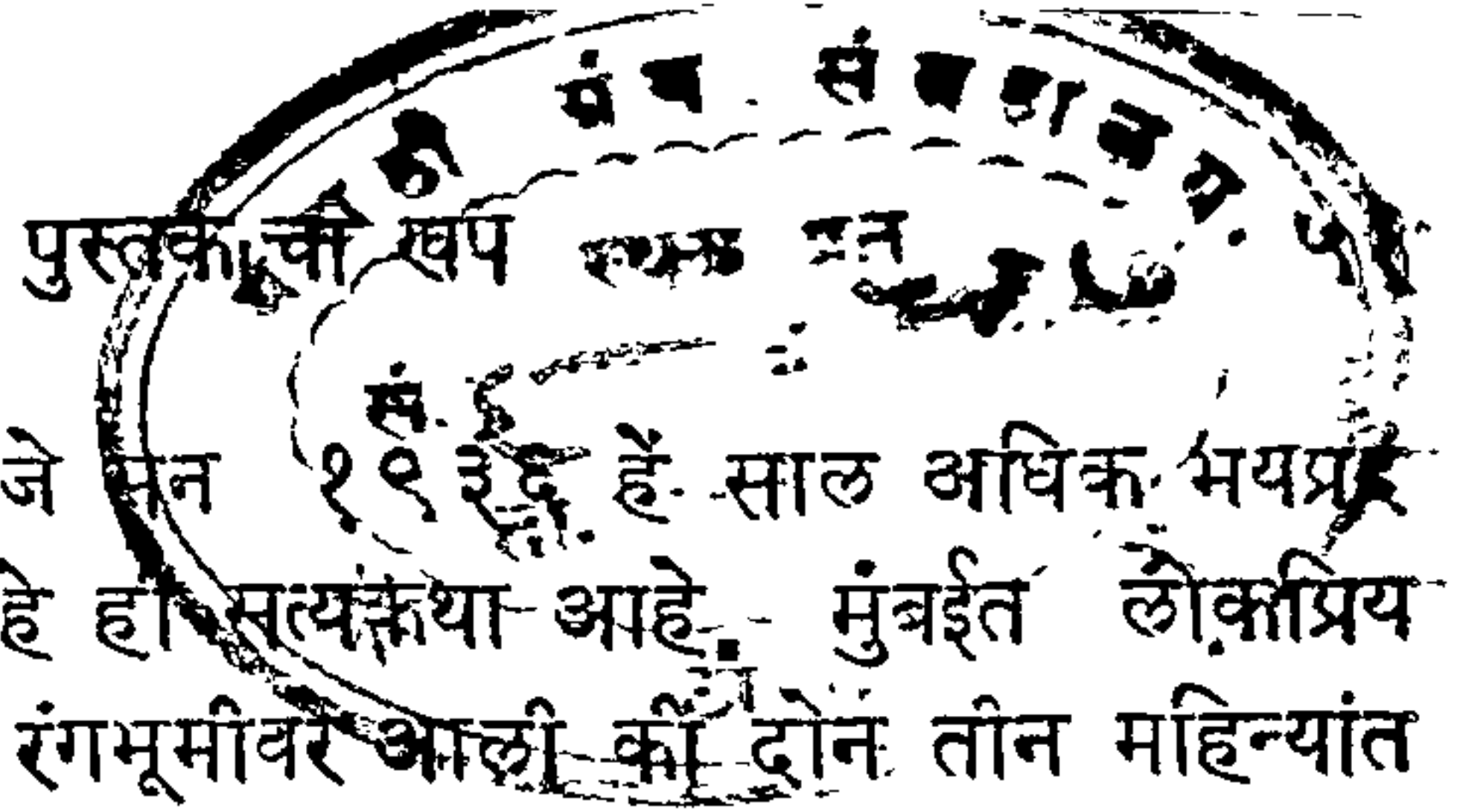
पुस्तक ४ श्री. रहाळकर यांचे ' नवेडोळे ' नाटक ५ प्रो. बेहेरे यांचा ' पावित्र्यत्रिडंबन ' हा लेख. ६ पारशी स्त्रियांनीं सिनेमांत कामें करूं नयेत असा मुंबईच्या पारशी सभेनें पास केलेला ठराव. ७ या संस्कृतीमंडळाच्या कांहीं सभासदांनीं पुणे येथें ' आल्फ्रेस्को ' नांवाचा जुगारी अड्डा चालविला त्याबद्दल चालकावर फिर्याद केली.

त्याप्रमाणेंच मंडळानें कांहीं ठरावही पास केले आहेत ते येथें सर्वत्र देता येत नाहीं. त्यापैकीं एक ठराव पुढील प्रमाणें आहे. शाळा कॉलेजातील विद्यार्थ्यांसमोर धंदेवाईक स्त्रियांची गाणीं करणें संमेलनांतून असभ्य आणि अनीतिकारक नाटकें करणें, संततिनियमन, घटस्फोट, तात्पुरती लग्नें वगैरे विषयावर बेजबाबदारपणें व अशास्त्रीय रीतीनें वादविवाद होऊं देणें वगैरे गोष्टी संस्कृति विवातक असून विद्यार्थ्यांच्या मनावर अनिष्ट परिणाम करणाऱ्या आहेत. त्यास आळा घालण्याबद्दल शाळाकॉलेजांच्या अधिकाऱ्यांना ही परिषद विनंती करित आहे.

ही थोडक्यांत माहिती देण्याचे कारण इतकेंच कीं, विशिष्ट दृष्टीनें विचार करणाऱ्या लोकांची मनोभूमि येवढ्या-वरून स्पष्ट होते. व वरील सारख्या विचारांचा एक प्रवाह समाजांत वहात आहे याचीही नोंद येथें व्हावी. बडोदे येथें दरसाल साहित्यसंमेलन भरते. यंदा श्रीमंत सयाजीराव महाराजांच्या सत्कारसमारंभाच्या कामामुळें ते भरले नाहीं. वऱ्हाड, उमरावती नागपूर इकडेही प्रांतिक संमेलने सुरू झाली पाहिजेत. प्रत्यक्ष संमेलनाप्रमाणें जरी नसली तरी कॉलेजांतून स्थापन झालेल्या वांङ्मय मंडळाची संमेलने यंदा बरीच झाली. प्रो. वामन मल्हार जोशी, प्रो. पटवर्धन, प्रो. फडके, श्री. वि. स. खांडेकर वगैरे नामांकित लोकांना अध्यक्ष निवडून त्यांचा आदर-सत्कार करण्यांत आला. हैद्राबाद येथें एक संमेलन भरावयाचे होते; श्री. वि. स. खांडेकर यांची अध्यक्ष

म्हणून निवड झाली होती; पण ते संमेलन अखेर भरलेच नाही. सांगलीकोल्हापुर येथील साहित्यकांनी दक्षिण महाराष्ट्र साहित्यसंमेलन भरविण्याचे ठरविले होते. अध्यक्षस्वागताध्यक्ष म्हणून राजेमहाराजांची निवडही झाली. पण अखेर ते स्वप्नच ठरले. वस्तुतां कोल्हापुर येथे दरसाल संमेलने भरवावयास अडचण पडू नये. हा उपक्रम कोल्हापुरच्या साहित्यप्रेमी जनतेने शक्य तितक्या लवकर सुरू करावा. एकदां संमेलने सुरू झाली व काहीं कार्य होत आहे असे दिसून आले की कोल्हापुरास भरलेल्या महाराष्ट्र साहित्यसंमेलनाचे वेळीं श्रीमंतांनी दिलेले अभिवचन श्रीमंत छत्रपतींना पुरे करता येईल अशी आशा आहे. उत्तरेकडील मराठी राज्यांतर्ही साहित्यसंवेवदलची आवड वाढती असून तिकडेही संमेलने सुरू झाली आहेत. ही खाचित अभिमानाची गोष्ट होय. ग्वाल्हेर, इंदूर व देवास या संपन्न मराठी संस्थानिकांनी आपल्या मायभाषेच्या अडचणी दूर करावयाचे मनांत आणल्यास त्यांना काय अशक्य आहे ? इंदूरच्या महाराजांनी थंदा इंदूर साहित्यसभेस २५ हजारांची इमारत दिलीच की नाही ? आपटेस्मृतिदिन, रे. टिळकस्मृतिदिन वगैरे प्रसंगीही झालेली भाषणे दृष्टीआड करण्यासारखी नाहीत. प्रांतिक साहित्यसंमेलनासंबंधी श्री ग. त्र्यं. माडखोलकर यांनी 'नवजीवन' मासिकाच्या दिवाळी अंकांत लिहिलेला लेख प्रांतिक साहित्यसंमेलनाची आवश्यकता व फायदे समजून घेण्यास उपयोगी पडेल.

साहित्यसंमेलने आणि नियतकालिके यांचा येथवर विचार झाला. आतां पुस्तकप्रकाशनाचा विचार करूं. गेल्या दोन सालच्या समालोचनांत मी सांगितले तेंच याही साली सांगावे लागत आहे. पुस्तक प्रकाशन ही मोठी अचडणीची बाब होऊन गेली असल्याने दिवसेंदिवस या थंदा जोखमाचा होणार अशी भीति वाटते. गेल्या तीनचार वर्षांपासून मराठी पुस्तकांचे गिऱ्हाइक निदान सत्तर टक्क्यांनी



घटले आहे. पुढील म्हणजे मी १९३६ हे साल अधिक भयप्रद दिसते. अतिशयोक्ती नव्हे ही सत्यकथा आहे. मुंबईत लोकप्रिय नाटककाराची कृती प्रथम रंगभूमीवर आली की दोन तीन महिन्यांत कमीत कमी तीन हजार प्रती खपत असत. आतां हजारही जात नाहीत. कादंबऱ्या आणि लघुकथा यांचे प्रमाण याहून निराळें नाही. अश्लील वाङ्मय जास्त संपते असे सनातनी लोक ओरड करीत असतात. पण त्यांत कांहीं अर्थ कां आहे ? 'कळ्यांचे विश्वास' या पुस्तकाबद्दल केवढा गवगवा झाला. टीका, प्रतिटीका आणि वादविवादांची वादळें केवढाळी तरी झाली. पण विचार करा या पुस्तकाच्या कितीशा प्रती खपल्या ? झालेल्या ओरडीच्या मानानें कमीत कमी दहा हजार प्रती खपावयास पाहिजे होत्या. पण या पुस्तकाची द्वितीय आवृत्ती सुमारे वर्षापूर्वीच निघाली; आणि कोठें अभ्यासाठीं मंजूर न झाल्यास आणखी ७-८ वर्षे तरी तिसऱ्या आवृत्तीचा विचार सुद्धां करावयास नको ! केव्हां केव्हां असे मला वाटते कीं अश्लील लिहिण्यानें कां होईना ग्राहकवर्ग वाढत असेल तर लेखकांनीं खुशाल अश्लील लिहावे ! हळूहळू ही वाचनाची आवड सुविचारप्रधान प्रकाशनाकडे वळवितां येईल. आमच्यांत वाचनाची आवड नाही तर ग्राहक वाढणार कसे ? प्रतिभा पाक्षिकाच्या शेवटच्या अंकांत श्री. ह. वि. मोटे यांनीं आपल्या संपादकीय मजकुरांत याविषयीं जे उद्गार काढले ते अगदी खरे आहेत. 'वाचक' हे क्षेत्र इतकें आकुंचित होत आलें आहे कीं तुमचा लेखकवर्ग एवढाच आजचा वाचकवर्ग आहे अशीही शंका येऊ लागली आहे असें श्री. मोटे म्हणतात. जास्त खप होत असेल तर तो कादंबऱ्यांचा होतो. पण कोणाच्या ? ज्यांनीं कादंबरीकार म्हणून कीर्ति मिळविली त्यांच्या; इतरांच्या नव्हे. चालू सालीं 'भंगलेले देऊळ' या कादंबरीची बऱ्यापैकी खपली व त्यापेक्षां

५३५

‘ उद्धार ’ या कादंबरीस फार अधिक मागणी आली आहे. एवढेंच ! अत्रे, फडके, खांडेकर, गुर्जर व माडखोलकर ह्यांच्या पुस्तकांना इतरांपेक्षा अधिक मागणी असते. या खेरीज जे लेखक आहेत त्यांची पुस्तके प्रसिद्ध करणे मोठे कठीण काम होय. आणि याही लेखकांची पुस्तके खपतात म्हणजे काय तर जेमतेम एक वर्षांत मेहनत घेतली तर पुस्तकांनिमित्त झालेला छपाई खर्च भरून येतो. नव्या व लोकप्रिय लेखकांच्या पुस्तकविक्रीचे मान इतपत अहे. नाथमाधव व गडकरी यांना आतां पहिल्या मानानें मागणी सुळीच नाही म्हटलें तरी चालेल. मात्र कै. हरी नारायण आपटे यांच्या कादंबऱ्या अद्यापही बऱ्याच खपतात. फडके, खांडेकर यांच्या कादंबऱ्या असल्यास दोन हजारांची आवृत्ती दोन चार वर्षांत खलास होते. त्यांची लघुकथांची पुस्तके कादंबऱ्यांच्या मानानें बरीच क्षमी खपतात. काव्यग्रंथांत ‘ यशवंत ’ कवीचे ‘ यशोधन ’ पुस्तक व अत्रे यांची ‘ झेंडूची फुले ’ यांना मागणी असते. माधव-ज्यूलियन यांच्या योग्यतेच्या मानानें त्यांच्या पुस्तकांचा खप नाही. ‘ गिरिश ’ ‘ टेकाडे ’ ‘ चंद्रशेखर ’ ‘ बी ’ ‘ जाम्बे ’ यांची पुस्तकेही तुरळक मागविली जातात. मग गोविंदाग्रज, विनायक, वी. लेंभे, बालकवी इत्यादि कवींचे संग्रह कितीसे खपत असावेत यांचा वाचकांनींच विचार करावा गंभीर विषयावरील पुस्तकांची विक्री पहिल्या वर्षी जास्त जास्त झाली तर तीनशेंपर्यंत होते. विभावरिचें पुस्तकांस इतरांच्या मानानें जास्त मागणी आहे. नाटकांच्या पुस्तकांत अत्रे, शुक्ल, वरेरकर व खाडिलकर या चार लेखकांच्या नाटकांना ग्राहकवर्ग नेहमी असतो. लघुकथांच्या पुस्तकांत य. ग. जोशी, बोकील, खांडेकर, यांच्या संग्रहांना थोडीफार मागणी असते. स्वतांचे ठराविक ग्राहक आहेत अशा मालांतर्फे प्रसिद्ध होणारी किंवा स्वतांच्या खास परिश्रमानें खपविली जाणारी पुस्तके बरील विक्रीच्या अंशाजातून

बाद केली पाहिजेत, पण बाकीच्या ग्रथांचें काय ? घटत चाललेली ग्राहकशक्ती कशी वाढेल याचा विचार मात्र कोणीच करीत नाहीं. साहित्यसंमेलनांतून या विषयाच्या चर्चेला प्रमुख स्थान दिले पाहिजे. इंदूरच्या साहित्यसंमेलनांत एक फंड काढण्याची योजना अध्यक्षस्थानी सुचविली आहे. त्यामुळे परिषदेचे सामर्थ्य वाढेल ? व तसे वाढलें पाहिजे हें खरे असले तरी ग्रंथकारांना परितोषिके देण्याची तरतूद करण्यापेक्षां त्याचे ग्रंथ कसे अधिक खपले जातील याचा प्रथम विचार करावयास नको काय ? उत्तेजनासाठीं बावयाच्या परितोषिकापेक्षां लेखकाला त्याच्या पुस्तक विक्रीमुळेच अधिक लाभ होणें शक्य आहे. देणगी म्हणून रक्कम दिली तरी किती देणार आणि कोणाकोणाला देणार ! तीच त्यांची पुस्तके खपची तर आपोआप लेखकांच्या विशांत मोबदला घेऊन पडेल. कादंबऱ्यांमुळे लेखकांना पैसे मिळतात, पण कादंबऱ्यांचा खप कमीतकमी पांच हजारपर्यंत गेला तर वर्षाकाठीं एक कादंबरी लिहून महिना पाऊणशें रुपयांची प्राप्ती लेखकांस सहज होईल.

पण खप वाढविण्याकडे साहित्यविषयक कार्यकर्ते लक्षच देत नाहींत. मुंबई शहर ही साहित्याची प्रमुख पेठ आहे. पण गेल्या दोन्ही संमेलनांत मुंबईचे हें महत्त्व लक्षांत घेऊन कांहीं विचार झाला आहे कां ? भाषा अशी लिहावी आणि भाषा तशी लिहावी हा उपदेश करण्यास श्रम लागत नाहींत, पण कशीहि भाषा लिहिली तरी बाजारांत त्याची किंमत आगेमागे होत नसते. सुशिक्षित वाचकांचा इंग्रजी पुस्तकांकडे कल असतो असें म्हणतात पण मला ती थाप वाटते; आमचे सुशिक्षित लोक कांहींच वाचत नाहींत अशी माझी कल्पना आहे. इकडेतिकडे प्रसिद्ध झालेले अभिप्राय वाचून ग्रंथ वाचल्याची ते वतावणी करीत असतात ! खरा वाचक म्हणजे इंग्रजीचे ज्ञान वेतावातेचा असलेला किंवा मुळीच नसलेला महा-

राष्ट्रातील सामान्य लोकांचा वर्ग ! माझा हा अनुभव आहे आणि स्वतःच्या अनुभवावर मी हे विधान करित आहे. पुस्तकांच्या मागण्या नीट तपासा त्यांत हजारांमधे दोन तीन पदवीधरही आढळणार नाहीत ! वाचनप्रियता वाढविण्यासाठी शिकस्तीचे प्रयत्न झाले पाहिजेत; सन १९३५ साल पुस्तकांच्या विक्रीचे बाबतीत असमाधानकारक गेले आहे.

विक्री वाढविण्यासाठी ठिकठिकाणी वाङ्मयव्यापारी पुढे आले पाहिजेत. त्याप्रमाणे संग्रहालये स्थापन झाली पाहिजेत. पण नवीन निर्माण होण्याऐवजी आहेत तीच ग्रंथसंग्रहालये दिवसेंदिवस कमीच होत असलेली दिसतात. एवढे मोठे मुंबईग्रंथसंग्रहालय ! पण त्या संग्रहालयांस प्रसिद्ध होणारी पुस्तके वेळेवर विकत घेता येत नाहीत. संग्रहालयांच्या वाढीबरोबरच प्रकाशक कंपन्या वाढल्या पाहिजेत. एकट्या दुकट्यांचे प्रयत्न आज होत असले तरी शेवटी निराशा, अपमान आणि खोटेपणा प्रकाशकांच्या पदरी पडतो. सामुदायिक व्यापार होईल तर बरे पण दोघांचे पटले तर महाराष्ट्रीय कसले ! अशा मनोरचनेच्या लोकांकडून सहकारितेने व्यापार होण्याची अपेक्षा करणेच चुकीचे होय. लिमिटेड कंपन्या महाराष्ट्रांत दोन तीनच आहेत. प्रो. बनहट्टी यांच्या प्रयत्नामुळे नागपुर येथे एक लिमिटेड प्रकाशक कंपनी स्थापन झाली आहे. लोकशिक्षण मंडळ व महाराष्ट्र पब्लिशिंग हाऊस या दोन कंपन्या आहेत पण त्यांचीही स्थितीही समाधान कारक नाही. मे. परचुरे पुराणिक आणि मंडळी कर्नाटक हाऊस, रामकृष्ण बुकडेपो, तुकाराम पुंडलीक शेठे, ह. वि. मोटे, मॉडर्न बुकडेपो, य. गो. जोशी. वि. वा. हडप व कांहीं माला यांनी यासाठी प्रकाशन केले आहे. त्याखेरीज कांहीं वाङ्मय मंडळांकडून पुस्तके प्रसिद्ध झालेली दिसतात. श्री. प्र. श्री. कोल्हटकर यांनीही दोन चार पुस्तके प्रसिद्ध केली.

‘सागर साहित्य’ याच्यासारखी कांहीं मंडळें उदयास आलीं. व कांहीं नामशेष झाली. महाराष्ट्र प्रकाशन संस्थेनें बरेंच प्रकाशन केलें. मौज प्रिंटिंग ब्युरो, मन्वन्तर छाप-खाना, चित्रशाळा, कोल्हापुर येथील मोघे यांचा बुकडेपो यानींही कांहीं पुस्तकें प्रसिद्ध केलीं. कर्नाटक प्रेसने ‘नवसाहित्यमाला’ व नागपुर येथें प्रो. वनहट्टी यांची माला या दोन नव्या माला या सालीं सुखें झाल्या. पैकीं पहिल्या मालेनें कमी किंमतींत पुस्तकें देण्याचा हेतू आपल्यापुढें ठेवलेला दिसतो. दुसऱ्या मालेतर्फें इतर भाषेंतील उत्कृष्ट ग्रंथ मराठींत प्रसिद्ध होणार आहेत. असा प्रयत्न अवश्य झाला पाहिजे. मराठी भाषा अधिक लौकर संपन्न करावयास परकीय वाळ्याची लँड होईल तितकी बरी. गोंकी असे म्हणतो आणि टॉलस्टाय असे सांगतात अशा प्रकारें व्याख्यानांतून बोलणाऱ्या वक्त्यांचे उद्गार कितपत सत्य आहेत ते कळावयास व त्यांच्या अनुरोधानें वाचक व लेखकांचे विचार सुसंपन्न व अद्यात् व्हावयास जगविख्यात ग्रंथकारांचे लिखाण मराठींतून छापल्यास कितीतरी कामगिरी होईल. पूर्वी अशी कामगिरी कांहीं लोकांनीं केली आहे कै. विजापूरकर यांनीं ग्रंथमालेतर्फें इंग्रजी ग्रंथांवरून बरीच पुस्तकें प्रसिद्ध केलीं. कै. विश्वनाथ काशिनाथ राजवाडे यांनीं ‘भाषांतर’ नांवाचे स्वतंत्र मासिक याच उद्देशानें आढले होते. ‘दाभोळकर आणि मंडळी’ या प्रकाशकानींही कांहीं इंग्रजी ग्रंथाची भाषांतरें प्रसिद्ध केलीं. श्रीमंत सयाजीराव महाराज गायकवाड यांनीं राष्ट्रकथामाला आणि महाराष्ट्र ग्रंथमाला अशा दोन माला सुखें केल्या होत्या. या मालांतून पुराणिक, काथवटे, आठवले, बेलवलकर, ओक, गायकवाड, सरदेसाई, वोडस, इत्यादि लेखकांची भाषांतरें प्रसिद्ध झालेली आढळतात. श्रीसयाजी साहित्यमालेतर्फेंही अद्याप भाषांतरात्मक ग्रंथ मधुनमधुन उजेडांत येत आहेत. प्रो. वनहट्टी यांनीं

अभिजात साहित्य-माला, नामांकित ग्रंथांची भाषांतरे प्रसिद्ध करण्यासाठी काढली याबद्दल मी त्यांचे व सहकार्यांचे अभिनंदन करतो. प्रकाशनांचे कामी वैयक्तिक प्रयत्न कांहीं थोडे झाले नाहीत. पण प्रकाशकांनी हे लक्षांत ठेवावे की पुस्तक प्रसिद्ध करणे हे जितकें कठीण त्याच्या शंभरपट त्याची विक्री करणें कठीण असते. म्हणून प्रकाशनाची खटपट होते त्याचवेळी विक्रीची खटपट झाली पाहिजे पुस्तक छापलेले पाहण्याच्या आनंदापेक्षां ते वाचले गेल्याचा आनंद अधिक असतो. पण एकटे प्रकाशक काय करणार ! वाचक वर्ग जेथे नाही तेथे पुस्तक विक्रीवाले तरी कसे पुढें येणार. सर्वापेक्षां ग्राहक वर्ग कसा वाढेल हा प्रश्न अत्यंत महत्वाचा आहे. हा प्रश्न सोडविण्याचा प्रयत्न आतांपर्यंत कोणीच केला नाही. मग तो या सालीही झाला नसेल तर आश्चर्य नव्हे. यासाठी राजकीय व सामाजिक कार्यकर्त्यांचे साहाय्य घेऊन वाचनालयें वाढविण्याची खटपट झाली पाहिजे. वाङ्मय प्रांताची स्थिती जवळ जवळ वेवारशी जागे प्रमाणे आहे. जातिविषक संस्थांच्या इमारतीस व कार्यास फंड जमतो पण ग्रंथसंग्रहालयांस पुरेसे वर्गणीदारही मिळत नाहीत. मग कायम स्वरूपाची तजवीज होणे कठीणच ! मराठी भाषेच्या प्रगतीचे कार्य सर्वांनीच उचलले पाहिजे. पण तसे घडत नाही एवढें खरे.

असो, अशाही केवीलवाण्या स्थितीत प्रकाशनाचे कार्य करणाऱ्या लोकांचे कौतुक करावे तेवढें थोडे होईल. यंदा दरसाल प्रमाणें कांहीं महत्वाचे प्रकाशन झाले. काव्यविभागकडेच पहा. एकाकाळीं नांवाजलेले कवि ' माधव ' यांचा संग्रह श्री. मोटे यांनी या साली प्रसिद्ध केला. श्री. माधव हे ऐतिहासिक काव्यें लिहीण्यांत पटाईत आहेत. रेखीव मांडणी हा त्यांचा विशेष होय. पण त्यांची कविता कळावयास टीपांचे साहाय्य पाहिजे. आजच्या बोलीतून फरार

झालेले शब्द पकडून त्यांस काव्यांत डांबून ठेवण्याची माधव या कवीस हौस दिसते. ऐटदार घडण व शब्दप्रभुत्व याखेरीज त्यांच्या वाखाणण्यासारखा दुसरा गुण नाही. ऐतिहासिक काव्याखेरीज त्यांची जी इतर काव्ये आहेत ती यथातथाच आहेत. कुंजविहारी या सोलापुरच्या कवीने लिहिलेल्या तान्हाजी मालुसज्यावरील लहानशा पोवाड्यांत जो शाहीरी थाट व तडफ आहे ती माधवांच्या काव्यांतून आढळत नाही. असे असले तरी ऐतिहासिक प्रसंग शोधून त्यावर आवडीने गीते गाणारा गेल्या काळांत माधव हाच एक प्रमुख कवि झाला आणि अशा कवीचा संग्रह प्रसिद्ध झाल्याने ती कवने आतां वाचण्यागाण्याची सोय झाली. पुस्तकाची छपाई छान झाली आहे. 'ताम्बे यांची समग्र कविता' या सार्लो प्रो. मायदेव यांनी प्रसिद्ध केली. या पुस्तकाचे संपादनकार्य प्रो. माधव त्र्यंबक पटवर्धन यांनी केले आहे. प्रो. पटवर्धनांनी केलेले संपादन पाहिले म्हणजे त्यांच्या अतिशहाणपणाची कीव येते ! मूळ काव्यांतील रूपे बदलून संपादकांनी जागोजागी जी अकल पाघळली त्यामुळे ताम्बे यांच्या काव्यांतील कांहीं ठिकाणचे सौंदर्य अजिबात नष्ट झाले. 'महाराष्ट्रांतील अभिप्रायांत म्हटल्याप्रमाणे त्यांनी तांबे यांनी मागील आवृत्तीतून दिलेल्या टीपा संपादकांनी खचित गाळावयास नको होत्या. वाचकहो, मराठी भाषेला सुधारण्यासाठी पुढे आलेल्या या प्रोफेसराला लवकरच आवरा नाही तर मराठी भाषेतील सौंदर्य नष्ट व्हावयास फारसी अवधी लागणार नाही. भाषा शुद्धीच्या छंदामुळे या गृहस्थाला वेड तर लागले नाही ना असा कित्येक वेळ भास होतो. 'विशेष व सामान्य जनहो' असा आरंभ करून इंदूर संमेलनांत हंसें उत्पन्न करणारे हे पंडित मराठी भाषेला दुर्बोध करणार किंवा काय कळत नाही ! तांबे यांची कविता या गृहस्थाच्या तावडीत न जाती तर किती तरी बरे झाले असते ! तांबे यांची

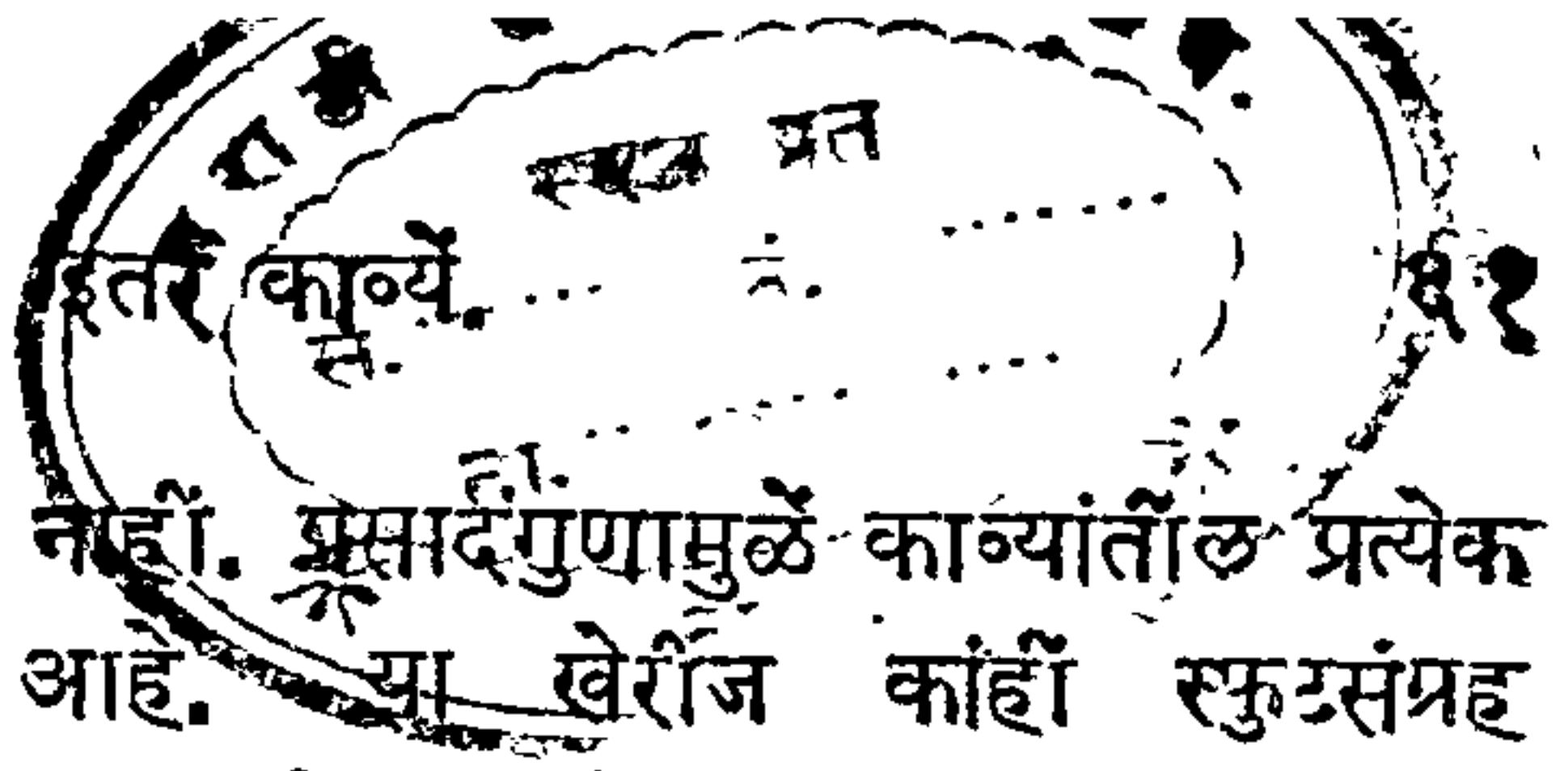
योग्यता आधुनिक कवींत फार श्रेष्ठ प्रकारची आहे. त्यांनी स्वतांचे असे तंत्र निर्माण केले व अनेकांना आपल्या गीतमाधुर्याने मुग्ध केले. आजचा काळ म्हणजे गेली १०।१५ वर्षे तांबे यांनी गाजविली आहेत. एवढे यशवंत लोकप्रिय कवी ना पण त्यांनाही तांबे यांच्या पुढे जातां आले नाहीं. काव्यमंदोरातील दुसरें बुद्धिमान जादुगार केशवकुमार होत. विडंबन काव्याचे केशवकुमार हे प्रवर्तक आहेत. 'झेंडूच्या फुलां' पलीकडे अद्याप यांची नजर गेली नसली तरी 'गीतगंगे'तील रंगदार कवनें म्हणजे त्यांच्या रंगेल भावनेचा विलास होय. 'झेंडूच्या फुलां'त त्यांची बुद्धि बोलते तर 'गीतगंगेत' त्यांची भावना बोलताना आढळते. 'गीतगंगे'ने त्यांना कवीची प्रतिष्ठा मिळवून दिली. प्रतिष्ठित विद्वान लोक आधुनिक नाट्यलेखकांकडे विद्वतेच्या आदराने पहात नाहीत असा माझा समज आहे. आणि त्यामुळे ग्रंथकार व कवि म्हणून वरच्या लोकांकडून प्रि. प्र. के. अत्रे (केशवकुमार) यांस पाहिजे तितका अंतःकरणपूर्वक आदर व मानसन्मान अद्याप लाभला नाही. माझ्या या अभिप्रायाचे रहस्य खुद्द अत्रे हेच बरोबर जाणतील; पण यासाठी प्रसिद्ध झालेल्या 'गीतगंगा' या त्यांच्या काव्यसंग्रहाने प्रतिष्ठित म्हणविणाऱ्या विद्वानांनीही माना डोलावल्या. सरळ व प्रासादिक रचना हा केशवकुमारांच्या काव्याचा विशेष होय. बालकवि खेरीज इतकी गोड व कोणासही समजेल अशी काव्यरचना 'केशवकुमारां' खेरीज बहुधा दुसऱ्या कोणत्याच कवींत आढळणार नाही. माझ्यामते यापुढे प्रि. प्र. के. अत्रे यांच्याकडून काव्यरचना होणे कठीणच दिसते. याचे कारण भावनेपेक्षा बुद्धीने त्यांच्यावर विजय मिळविला आहे तो, इतका की त्यांची भावना यापुढे बुद्धी खेळविल तशी खेळणार. आणि बुद्धीचा विलास या अभ्यासद खरा पण जगाला धरून असतो, त्यामुळे केवळ काव्य

आंतापुरतेच भावनेच रंगण त्यांना मर्यादित राहिले नाही. ' स्वप्न रंजन ' हा माधवज्युलीयन यांच्या स्फुट काव्यांचा संग्रह या साली प्रसिद्ध झाला. आधुनिक मराठी कवींमधे माधवज्युलीयन यांची मोठी योग्यता आहे असे श्री. श्रीखंडे यांचा 'लोकशिक्षणां'तील लेख वाचूनहि मला वाटते. विशेषतां प्रणयात्मक कविता मोहक असतात. रंगेल मनाचा ढंगदार विलास त्यांच्या काव्यांत उत्तम प्रकारे प्रतीत झाला आहे. भावनेची विविध दृष्ये, चालींची विपुलता व शृंगाराचे निरनिराणे बहाणे त्यांच्या काव्यांतून वाचताना तरुणतरुणींचे प्रणय-विचार उत्कृष्ट होतीलच पण गेल्या आयुष्याच्या मनोरम काळांतलि स्मृतिचित्रे वृद्धांच्याही दृष्टीपुढे उभी राहतील. त्यांनी आपल्या योग्यतेने स्वतांचा वाचक वर्ग निर्माण केला. या विलासप्रिय कवींची एकांत-प्रियता दुदैवाने बराच वाढल्यामुळे लोकांना या कविश्रेष्ठाची योग्य कल्पना अद्याप झालेली नाही. 'यशोगंध' हा यशवंत कवीचा दुसरा संग्रह या साली प्रसिद्ध झाला. या संग्रहातील काही कविता वगळ-ल्यास लोकाना नवे असे त्यांत काही नाही ' यशोधना ' चा लौकिक या संग्रहास लाभणे कठीण दिसते. दुसरे असे की यशवं-तांच्या यांतील कविता वाचतांना असा भास होतो की त्याच त्याच कविता आपल्यापुढे येत असाव्यात.

यानंतर ' आकाशगंगा ' 'संराक' 'बाण्डगूळ' या ग्रंथांचा उल्लेख केला पाहिजे. तिन्ही पुस्तकांचा विशेष म्हणजे त्यांत विडंबनात्मक, विनोदी आणि उपहासात्मक कविता आहेत. या काव्यतंत्राचे प्रि. अत्रे हे आवप्रणेते होत. 'संराक' यांच्या काव्यांत विचारांचा बराच साधे-पणा आहे. त्यामुळे त्यांच्या विनोदी व विडंबन या दोन्ही काव्यतंत्रा-रींच्या धार बऱ्याच बोधट आहेत. विडंबन आणि उपहासात्मक काव्य मुख्यतः बुद्धिनिष्ठ असते. अशाप्रकारची काव्ये लिहिण्याचा आतां-पर्यंत अनेकांनी प्रयत्न केला. पण प्रि. अत्रे यांच्या ' श्वेदुच्या फुलां-

तील संग्रहाशी बरोबरी करील जसे कवन बहुधा क्वचितच आढळते, याचे कारण प्रि. अत्रे यांच्या बरोबरीचा बुद्धीवान असा एकहि कवि नाही. या तीन संग्रहांखेरीज 'गाजराच्या पुग्या' या नांवाचा एक संग्रह प्रसिद्ध झाल्याचे ऐकतो, मीं हे पुस्तक पाहिले नाही. यांत अनेकांच्या कवितांचा समावेश होणार असल्याचे प्रसिद्ध झाले होते. शिवाय इतर जे कांहीं लहान मोठे संग्रह प्रसिद्ध झाले त्यांतूनही अशा प्रकारच्या कविता मधूनमधून आढळतात. 'भ्रमाचा भोपळा' या नाटकांत घातलेले 'उपास भज लागला' हे कु. मालती किलोस्कर हिचे कवन मूळ कुमारी अक्का पंतप्रतिनिधी हिने संपादिलेल्या काव्यसंग्रहातून घेतलेले अनेकांच्या परिचयाचे झाले आहे. कुमारी अक्का पंतप्रतिनिधी हिचे खरे नांव मला ठाऊक नाही पण औंधच्या राजे साहेबांची ही नाटक असल्याकारणाने हिचा उल्लेख 'अक्कासाहेब पंतप्रतिनिधी' असाच सर्वत्र केलेला आढळला. पाळण्यांतले नांव 'अक्का' नसावे. धनवान लोक नांवापासूनही श्रीमंतीची मिजास दाखवितात त्यांतलाच हा प्रकार आहे. 'आकाशगंगे'तील बहुतेक कविता म्हणजे वडील माणसांची नवकल करणाऱ्या मुलांचा खेळ दिसतो. 'बांडगूळ' हे काव्याचे नांव मात्र मला आवडत नाही. पण या संग्रहातील काव्ये बरीच सरस आहेत; श्री. चं. ग. दिक्षित यांनी नव्या व्यवसाया-मागे लागूनही हा नाद सोडून नये अशी माझी त्यांना सूचना आहे.

दादरचे एक सुस्वभावी कवि श्री. दत्तप्रसन्न कारखानीस यांचा काव्यसंग्रह सौ. उषाबाई जोशी यांनी प्रसिद्ध केला. 'क्षितिजावर' या संग्रहातील कविता गोड तर खऱ्याच शिवाय विकार आणि विचार यांचे बरेच पावित्र्य श्री. कारखानीस यांच्या कवितेत आढळते. यांच्या बहुतेक कविता अशा आहेत की त्या लहानापासून वृद्धांपर्यंत जमलेल्या मंडळींत गावून दाखविल्या तर त्या ऐकताना कोणा-



सही चमत्कारिक वाटणार नाही. प्रसंगी गुणामुळे काव्यांतिल प्रत्येक पंक्ती माधुर्याने नटली आहे. या खेरीज कांहीं स्फुटसंग्रह प्रसिद्ध झाले आहेत. माळव्यांतिल कांहीं कवींचा एक संग्रह या साली 'मालविका' या नांवाने प्रसिद्ध झाला. त्याचा मुद्दाम उल्लेख अभिमानाने केला पाहिजे. 'झेंडूंची फुले' या लोकविख्यात पुस्तकाची तिसरी आवृत्ती निघाली. 'चंद्रप्रभा' या नांवाचे श्री. अ. ज. करंदीकर यांचे काव्य, 'काव्यकुमुदकलिका' हा हैद्राबाद संस्थानांतिल एका कवींचा संग्रह, 'अरुणोदय' हा कवि पटवर्धन यांचा संग्रह, खाडीलकर यांचे तीन नवीन पोवाडे, धुळ्याचे मुचोटी यांचा 'तान्हार्जी मालूसग्यांचा पोवाडा, श्री. प्रल्हादराय यांचा लिहीलेला 'बाजीप्रभू देशपांडे' यांच्यावरील पोवाडा, श्रीमती सीताबाई पाटील यांची 'मातृभूमी'वरील कवने, श्री. साने यांचा 'पत्री' या नांवाने प्रसिद्ध झालेला संग्रह, किरण कवि यांचा संग्रह इत्यादी पुस्तके या साली प्रसिद्ध झाली. काव्यशास्त्रावर या साली एकही ग्रंथ अथवा टोकात्मक प्रबंध प्रसिद्ध झाला नाही. मात्र नियतकालिकांतून काव्य विषयावर चर्चात्मक लेख प्रसिद्ध झालेले आढळतात; त्यांत प्रो. मा. त्र्यं. पटवर्धन व प्रो. साळगांवकर यांच्या 'प्रतिभे'तील लेखांचा मी येथे मुद्दाम नामनादर्श करतो. काव्याच्या बाबतींत महाराष्ट्रशारदा दिवसेंदिवस दरिद्री होत चाललेली दिसते यांचे कारण टीकाकारांनीं अवश्य शोधून पहावे. 'काव्यशास्त्र विनोद' या ज्ञानप्रकाशच्या पुरवणींत कांहीं नमुनेदार काव्ये आढळलीं. विस्तारभयास्तव त्यांचा तपशील देणे कठीण आहे.

लघुकथांच्या पुस्तकांत या वर्षीही बरीच भर पडली. नियतकालिकांमधून तर कितीतरी गोष्टी प्रसिद्ध होतात. दिवसेंदिवस भाषेचा डौलदारपणा वाढत आहे. त्याचप्रमाणे कलात्मक लिहीण्याची आवडही वाढती दिसते. ही वेळ अशी आहे की आतां

निर्भीड टीका लिहून रुळेलेल्या मार्गाच्या वज्याडाईटाची कल्पना लेखकांना आणून दिली पाहिजे. गोष्टींतून विषयाची विविधता नाही किंवा भावनेच्या स्वतंत्रपणा नाही. मेचके लिखाण लिहीण्याच्या पद्धतीचा बराच विस्तार झाला आहे एवढे खरे. आपटे, सरस्वती कुमार, गुर्जर, देशपांडे, गिरजिबाई केळकर, इत्यादि जुन्या लेखकांची धाटणी व आजचे लोकप्रिय लघुकथालेखक यांची लिहीण्याची पद्धत यांत बरेच अंतर पडले आहे. कथात्मक वाङ्मय असे आहे कीं व्यक्तीस्वातंत्र्याचा पुरस्कार व प्रचार करण्यास फार उपयोगी पडते. पण या व्यक्ती स्वातंत्र्याचा पुरस्कार आमचे लघुकथा लेखक केवळ प्रणय अथवा लैंगिक भावनेपुरताच करीत असतात. 'प्रतिभे' मधे प्रसिद्ध झालेली 'गृहिणींचा सत्याग्रह' ही गोष्ट मनोरंजक असली तरी ती इतकी प्रचारात्मक आहे कीं कलेला त्यांत स्थानच नाही. अशा गोष्टी वाचनानाच मनोरंजन होते. त्याचा परिणाम मात्र मनावर टिकत नाही. दिवसेंदिवस अशा गोष्टी लिहीण्याचा व वाचण्याचा कंटाळा येत आहे. उदाहरणासाठीच या गोष्टीचा उल्लेख केला. कला आणि नीती, कला आणि जीवन या विषयावर व चर्चेवर वाद होतात. त्याचप्रमाणे कला आणि प्रचार याचा जर एकदां विचार होईल तर बरे. ललितवाङ्मयाचा उपयोग प्रचाराकडे करावा हे कोणाच नाकबूल करीत नाही. पण तो मुख्य हेतू नसावा. प्रचार हा मुख्य उद्देश धरून लिहीलेले वाङ्मय ललितकलेत मोडू नये असें माझे म्हणणे आहे. केवळ वेपाररून पारख करण्यासारखे ते होईल. प्रचार हे कलेचे परिणाम आहे हे लक्षांत ठेवले पाहिजे. गोष्टी काय, कादंबऱ्या काय अगर नाटके काय यांतील पात्रे वर्तमान काळापुढे तसूभरही उतरू शकत नाहीत. सत्यकथन हा ललितवाङ्मयाचा आत्मा आहे. आणि सत्यकथन म्हणजेच प्रचार होय असें मानायलास हरकत नाही. ललितवाङ्मयाचा

उपयोग प्रचाराकडे करावा असें मी म्हणतो तें याच अर्थानें. शारदा नाटक किंवा त्याच्या अलीकडे पलीकडे झालेली नाटके आपण जर पाहिली तर ती बहुतेक मताप्रचारासाठीं लिहीलेली दिसतील. पण त्या नाटकांतून 'सत्यकथन' करण्याकडे किती तरी लक्ष पुराविले गेले आहे. ती नाटके तशी असोत अथवा नसोत, कथात्मक वाङ्मयास भविष्यकालीन घटनात्मक गोष्टींचा आणि मतांचा प्रचार हा बराच वावडा आहे यांत शंका नाही. इंदूरच्या साहित्य संमेलनांत प्रो. चिंतामणराव जोशी यानी वाचलेल्या एका निबंधांत साहित्याला कलेचा सासुरवास होतो असे लिहीलेले आहे ! त्यांच्या स्वतःच्या वाङ्मयांसी हे त्यांचे मत ताडून पहाता लेखकाने केलेल्या विधानाबद्दल आश्चर्य वाटणार नाही. प्रो. चिंतामणराव जोशांच्या निबंधावर बरीच टीका करता येईल. या निबंधांत पूर्वीसारख्या अघळपघळ गोष्टी हल्लीं वाचावयास मिळत नाहींत अशी तक्रार केली आहे ! आजकाल कलात्मक गोष्ट लिहीण्याची प्रवृत्ती वाढलेली दिसते. स्थलैकता, कार्यैकता आणि कालैकता साऱ्याकडे लेखकवर्ग लक्ष देतो. पण तेवढ्यानेच कलाविकास साधला असें होत नाही. आजच्या बहुतेक लघुकथा प्रणयात्मक घटनेनें खचलेल्या असतात हे खरे आहे व त्याबिखूद्ध माझेही मत आहे. पण लक्षांत ठेवले पाहिजे कीं कोणत्याहि वाङ्मयांत प्रसिद्ध होणाऱ्या गोष्टी पहा त्यांत अशाच गोष्टी विपुल असतात. आमच्या संसारांत आणि रोजच्या राहणींत व कार्यांत जसजसा बदल होत जाईल त्याप्रमाणें गोष्टीचे विषय व प्रसंग वाढत जातात, एवढी नाही. अलीकडे नाट्य आणि सुलभ प्रसिद्धीसाठीं कांहीं लेखक मजूर व शेतकऱ्यांच्या जीवनावर गोष्टी लिहूं लागलेले दिसतात ! या गोष्टीसंबंधी प्रो. चिंतामणराव जोशी यानी व्यक्त केलेले मत वस्तुस्थितीला अगदीं धरून आहे. मजूर आणि शेतकरी यांच्या जीवनातील प्रसंगावर

लिहावयाच्या गोष्टी स्वानुभवाच्या नसल्या तरी स्वतां पाहिलेल्या असल्या पाहिजेत.

लघुकथांचे संग्रह या साली प्रसिद्ध झाले असले तरी ती गेल्या सालपेक्षा कमी आहेत. ' आवडत्या गोष्टी ' या संग्रहाचा प्रथम उल्लेख केला पाहिजे. ह्या संग्रहांत एकूण अनेक लेखकांच्या गोष्टी असून आतांपर्यंतच्या कथावाङ्मयाचा हाच मोठा व वाखाणण्यासारखा प्रातिनिधिक संग्रह होय. मराठी कथावाङ्मयाचे सर्व गुणदोष या एका संग्रहाच्या वाचनाने समजून येतात. या संग्रहास प्रो. लागू यांनी लिहिलेली प्रस्तावना मार्मिक, विद्वताप्रचुर व मार्गदर्शक आहे. या संग्रहाच्या सहाय्याने लघुकथा वाङ्मयाच्या विकासावर उत्कृष्ट निबंध लिहिता येईल. विश्वविद्यालयांतील अभ्यासक्रमांत पुढे कांहीं वर्षे तरी या संग्रहाचा अखंड समावेश करावा लागेल. प्रो. लक्ष्मणराव सरदेसाई यांच्या गोष्टींचा दुसरा संग्रह ' सागराच्या लाटा ' या नावाने प्रसिद्ध झाला. मला वाटते प्रो. सरदेसाई यांनी लघुकथा वाङ्मयाचा दर्जा आपल्या कलाकुशल लेखणीने वाढविला आहे. ' कल्पवृक्षाच्या छायेत ' या गेल्या साली प्रसिद्ध झालेल्या त्यांच्या पहिल्या संग्रहाप्रमाणेच हा संग्रहही लोकादरास पात्र होईल. विशिष्ट मांडणी, मेचकी वर्णने, रेखीव रचना हे गुण त्यांच्या गोष्टी मधून आढळतात. त्यांनी हल्लीप्रमाणे प्रसंगाची विविधता राखून जर आपणखी गोष्टी लिहिल्या तर मराठी भाषासेवकांत त्यांना मानाचे स्थान लाभेल. ' खेड्यातील स्वभावचित्रे ' या पुस्तकांत गोष्टींचा संग्रह नसला तरी त्या एक प्रकारे समाजांतील कथाच म्हणावयास हरकत नाही. खेडेगांवातील अनेक चालिरीतींची चित्रे सूक्ष्मपणे रेखाटली आहेत. कोटीबाजपणा हा गुण लेखकांत बराच दिसतो. मांडणी व भाषा ओघवती व कसलेली वाटते. श्री. सोमण यांच्या या पुस्तकाचा सामाजिक इतिहास लेखकाला बराच उभययोग होईल.

अधूनमधून विनोदही साधला आहे. सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री. वि. स. खांडेकर यांच्या गोष्टींचा आणखी एक संग्रह श्री. ब्रह्मानंद मुकुंद नाडकर्णी ह्यांनी प्रसिद्ध केला. या 'दुर्बिंदू'ची चाल-चुणूक त्यांच्या वडील भावंडाप्रमाणेच आहे. श्री. पेंडसे यांच्या 'संगमांत' कथात्मक वाङ्मयाचाच आधिक भरणा दिसतो. या संग्रहास श्री. प्र. के. अत्रे यांनी लिहिलेली प्रस्तावना मूळ पुस्तकांतील मजकुरापेक्षां आधिक वाचनीय आहे. श्री. वि. ल. बर्वे यांचा एक कथ संग्रह 'कोवळी पोफळे' या नांवाने मुंबईच्या रामकृष्ण बुकडेपो मार्फत प्रसिद्ध झाला. ह्या संग्रहाची छपाई यासाली प्रसिद्ध झालेल्या कोणत्याही संग्रहापेक्षां कमी प्रतीची आहे व संग्रहही फारसा महत्त्वाचा नाही. सौ. मालतीबाई दांडेकर या लेखिकेने आपल्या लघुकथा 'कथामालती' या नांवाच्या संग्रहांत समाविष्ट केल्या आहेत. सौ. आनंदीबाई शिर्के आणि प्रस्तुत लेखिका यांच्या गोष्टींची धाटणी बरीच सारखी आहे. वाङ्मयांत या संग्रहांला महत्त्वाचे स्थान जरी लाभले नाही तरी साधीभोळी रचना व क्षणभर करमणूक करण्याइतके घरगुती प्रसंगवैपुल्य 'कथा मालती'मध्ये आढळते. 'दीपकळी' या प्रो. सौ. कुसुमावती देशपांडे यांच्या गोष्टींचा संग्रह यावर्षी प्रसिद्ध झालेल्या संग्रहांत पहिल्या प्रतीचा ठरतो. प्रासादिक भाषा, वेचक विचार व मुळकल्पनेचा परिपोष करण्यासाठी बनवलेली घटना लेखिकेच्या योग्यतेची साक्ष पटविते. हे पुस्तक श्री. प्र. श्री. कोल्हटकर यांनी प्रसिद्ध केले आहे. याच प्रकाशकांनी गेल्यासाली 'कृष्णाबाई' या लेखिकेचा 'मानसलहरी' हा उत्कृष्ट कथासंग्रह प्रसिद्ध केला होता. औंधच्या कु. अक्का पंतप्रतिनिधी हिने 'हिमकालिका' या नांवाचा अनेक लेखकांच्या गोष्टींचा एक लहान संग्रह प्रसिद्ध केला आहे. श्री. लोहोकर यां या गोष्टी 'विसावा' या नांवाने स्वतंत्र पुस्तकांत पुनर्मुद्रित झाल्या आहेत.

याखेरीज 'कथासुवर्ण' ह्या नांवाचा अनेक लेखकांच्या कथासंग्रहाची भर पडली. 'फुलोर' आणि 'पंखरण' या नांवाच्या पुस्तकांत केवळ गोष्टी नसल्या तरी मी त्यांचा समावेश सोयीसाठी याच विभागांत करतो. या साली कालेजांतून स्थापन झालेल्या वाङ्मय मंडळानी हे दोन संग्रह प्रसिद्ध केले. पहिला संग्रह नागपूर येथील एका कॉलेजांतील वाङ्मय मंडळातर्फे प्रो. ना. सी. फडके यांच्या अध्यक्षतेखाली प्रसिद्ध झाला. दुसऱ्याचे प्रकाशन मुंबई येथील सेंटझेवियर कॉलेजांतील मंडळामार्फत प्रि. प्रल्हाद केशव अत्रे यांच्या अध्यक्षतेखाली झाले. मुंबईचे लेखक श्री. के. मु. नाडकर्णी यांच्या गोष्टींचा एक संग्रह 'हृदयनिनाद' या नांवाने बकुलमालने प्रसिद्ध केला आहे. या पुस्तकाच्या जाहिरातींत येणारा श्री. वि. स. खांडेकर यांनी लिहिलेल्या प्रस्तावनेतील उताराच येथे देतो. म्हणजे या 'हृदयनिनाद' संग्रहासंबंधी वेगळे असे लिहिण्याचे कारण नाही. "श्री. नाडकर्णी यांची गणना साहित्यकांतील कलमी आव्यांत होवो वा न होवो ! कित्येक रायत्रळ आम्बे प्रसंगी कलमी आंब्याहूनही रसमधुर असतात असा अनुभव येतोच की नाही ? त्यांच्या कथालेखनांतले विविधगुण अधिक स्पष्टपणे प्रगट होतील, तर मराठी कथालेखकांत त्यांना स्वतांचे स्थान मिळविणे कांहीं अशक्य नाही, असे श्री. खांडेकर यांना आपले मत दिले आहे. या खेरीज श्री. नी. म. केळकर, श्री. साठे इत्यादिकांचे छोटेसंग्रह प्रसिद्ध झाले आहेतच.

आजचे लघुकथा लेखक बहुतेक हौशी आहेत. मजेसाठी लिहावयाचे एवढेच त्यांच्यापुढे लेखनाचे वैशिष्ट्य असते. कथावाङ्मय निर्माण करण्यांतच ज्यांच्या लेखनशक्तीची करामत दिसते व तेथल्या वाङ्मयांत आपण नांव लौकिक मिळवू असे ध्येय ज्या लेखकांपुढे आहे असे मला दोनच लेखक दिसतात. एक श्री. य. गो. जोशी

व दुसरे प्रो. लक्ष्मणराव सरदेसाई आणि म्हणूनच अनेक लेखकांनी आपल्या गोष्टी पुस्तकरूपाने जसे संग्रहित केल्या तरी लघुकथा-लेखन हेच ज्याचे वैशिष्ट्य अशा लेखकांच्या संग्रहाला मी अधिक महत्व देतो. कथावाङ्मयांत श्री. वि. स. खांडेकर यांनीही अव्वल दर्जाचा लौकिक मिळविला आहे. पण कथा वाङ्मयाच्या 'बंड गार्डन' म्हणून ते कादंबरी वाङ्मयाच्या 'एप्रेंस गार्डन' मध्येच अधिक डुलणारडुलणार असा रंग दिसतो; मराठी साहित्यांत आतांपर्यंत लघुकथांची बरीच भर पडली आहे. याच ठिकाणी 'कला' या मासिकाने काढलेल्या लघुकथा खास अंकाचा उल्लेख करावयास हरकत नाही. हा अंक छपाईच्या दृष्टीने चांगला आहे; मात्र बहुतेक गोष्टी वाखाणण्यासारख्या नाहीत. नाट्यवाङ्मयांत या साली महत्त्वाची अशी भर पडली नाही. दिवसेंदिवस ह्या विभागाचे वैशिष्ट्य कमी होत आहे असे दिसते. नाटकाची पुस्तके वाचण्याकडे आमच्या वाचकवर्गाचा मुळीच कल नसतो. रंगभूमिवर नाटक असेल तोंपर्यंत पुस्तकांना मागणी असते. रंगभूमिवर नाट्यकृति येणे दिवसेंदिवस कठीण होत चालले आहे. एक दोन कंपन्याखेरीज मराठीत नांवाजण्यासारख्या नाटक कंपन्या आतां राहिल्या नाहीत. मागील साली मी असे स्पष्ट दिसिले होते की चित्रपटामुळे रंगभूमी मागे पडत चालली आहे. ही स्थिति या सालीही सुधारली नाही. उलट पूर्वीपेक्षा वाईट झाली. बालमोहन संगीत मंडळाने प्रि. प्र. के. अत्रे यांची नाटके रंगभूमिवर आणण्यास सुरवात केल्यापासून ह्या कंपनीचा लौकिक वाढला. पण एकटी एक कंपनी कितीशी पुरी पडणार ! या कंपनीने जाहिराती देतांना रंगभूमि मरणार किंवा काय या वादग्रस्त प्रश्नास आमची नाटके पहा म्हणजे आपोआप उत्तर मिळेल असे प्रसिद्ध केले होते. पण कांहीं झाले तरी ती जाहिरात आहे. तेव्हां त्यांत कितीसे तथ्य

असणार हें स्पष्ट करून सांगण्याचे कारण नाही. प्रिं. अत्रे याचे 'भ्रमाचा भोपळा' हे नाटक याच कंपनीने यासाली रंगभूमीवर आणलें. 'भ्रमाचा भोपळा' हें केवळ करमणुकीच्या हेतूने लिहिलेले नाटक आहे. कांहीं शिकवावे असा नाटककाराच्या मनांतही उद्देशही नव्हता. त्यामुळे या नाटकांत वास्तवतेच्या दृष्टीने दोष असले तरी भरपूर करमणूक करणारी मराठींत जी दोन चार नाटके आहेत त्यांत 'भ्रमाचा भोपळा' हें एक सरस नाटक या साली प्रसिद्ध झाले. महाराष्ट्राची मनोभूमीच कांहीं और खरी ! महाराष्ट्रीयाना विनोद समजत नाही असे म्हणावे तर तेही चुकीचे ठरेल व समजतो असे म्हटले तर तसेही दिसून येत नाही ! 'भ्रमाचा भोपळा' या नाटकावर 'ज्ञानप्रकाश' मध्ये जो संपादकीय चार कालमी लेख प्रसिद्ध झाला त्यांत अशा प्रकारच्या नाट्यकृतीचे विद्वत्ताप्रचूर समर्थन केले आहे. वाचकांनी च टीकाकारांनी तें अवश्य वाचावे. मला स्वतांला 'भ्रमाचा भोपळा' हे नाटक फार आवडते. 'भावबंधन' या कै. गडकऱ्यांच्या नाटकाशी तुलना करून पहात्री, ज्या वेळीं 'भावबंधन' हें नाटक रंगभूमीवर आले त्याचवेळीं 'भ्रमाचा भोपळा' हे नाटक रंगभूमीवर आले असते तर प्रेक्षकांच्या उज्या याच नाटकावर अधिक पडल्या असत्या. 'भ्रमाचा भोपळा' हे नाटक कांहीं बाबतींत 'भावबंधन' या नाटकापेक्षाही सरस आहे. या नाटकावर बऱ्याच टीका झाल्या आहेत. नाटकाचे बाबतींत काय किंवा गोष्टींच्या बाबतींत काय चौऱ्यांचा चटकन आरोप करून लेखकांचे महत्त्व कमी करण्याची हीन बुद्धी अनेकांकडून दाखविली जाते. अत्रे यांच्या नाटकांवर असा आरोप करण्यांत आलेला होता. याबाबतींत थोडेसे स्पष्ट लिहिलेले बरे. आरोप करणारे कोणी निघाले तरी ते प्रसिद्ध करणाऱ्यांनी सत्या-सत्यतेचा विचार केला पाहिजे. वाटेल त्याने उठावे आणि म्हणावे कीं, कल्पना व

संविधानक चोरले आहे आणि त संपादकानें निर्लजपणानें छापाचे ही फार खेदाची गोष्ट होय ! असे लिहिणें छापणें हे मागून वार करण्यासारखे होय. एकाद्याचे यश कलंकित करण्यास हा वर्तमान-पत्रांच्या हातीं असलेला अगदीं सोपा इलाज आहे. एकाला सुचले तसे दुसऱ्याला सुचत नसलेच पाहिजे असा का कोठें नियम आहे ? प्रसिद्ध नाटककार व नाट्यटीकाकार सेंट जॉन आयर्विन यानें स्वतांचा म्हणून दिलेला अनुभव पुढीलप्रमाणें आहे. सेंट जॉन आयर्विन म्हणतो कीं,

I remember meeting Mr. Somerset Mangham one afternoon, and telling him the story of a play I had just written. He listened to me with a patience that was heroic, and then said, "That's a story of my play, 'The Constant Wife', which is to be produced next week." Collapse of me ! This incident causes me to remark that charges of plagiarism, in my experience, nearly always turn out to be unfounded. Certain themes are in the air, and it is inevitable that they should occur simultaneously in several minds. There is no copyright in ideas.

वरील मत आमच्या संपादकांनी व लेखकांनी लक्षांत ठेवले पाहिजे. विशेषतां अत्रे यांच्या बाबतींत अशा प्रकारचा म्हणजे चौर्याचा आरोप करण्याचा कांहीं हलकट वृत्तीच्या लोकांनीं जाणून-बुजून केलेला ऐकला म्हणून त्याचा खुलासा या ठिकाणीं केला आहे. आपल्यांत कर्तृत्व नाहीच, निदान दुसऱ्याचा पराक्रम पाहून आनंदित होण्याइतकाहीं आमच्यांत उदारपणा नाही याचें हे उत्कृष्ट उदाहरण होय. तसेच मला संविधानक स्वप्नांत सुचले असें कोणी म्हणेल तर त्याबद्दलही चेष्टा करण्यांत येते; पण स्वप्नांत संविधानकेंच काय, संपूर्ण कविताही तयार होतात व जागे झाल्यावर त्यांचीं नोंद

होते. सुप्रसिद्ध लेखक किरात यांनी स्वतांचे अनुभव देतांना एक कविता स्वमांत तयार झाली व जागे झाल्यावर उतरून काढली असें प्रसिद्ध केले आहे. आगल ग्रंथकारांचोही अशी उदाहरणे देता येतील. असो, ' भ्रमाचा भोपळा ' हें नाटक ज्यावेळीं रंगभूमीवर आले त्याच वेळीं ' पैसाच पैसा ' हे श्री. माधवराव जोशी यांचे नाटक प्रसिद्ध झाले. श्री. जोशी हे एक बुद्धिमान व सूक्ष्म-निरक्षक नाटककार आहेत यांत शंकाच नाही. बुद्धीमत्ता आणि निरक्षणशक्ती हे दोन्ही गुण याही नाटकांत उतरले आहेत. पण ही नाट्यकृती तंत्रदृष्ट्या न साधल्यामुळे नाटक परिणामकारक झाले नाही. या नाटकांत श्री. जोशी यांनी हल्लीचा ' प्रोफेसर वर्ग ' व ' संपादक वर्ग ' यांच्यावर बरीच टीका केली आहे. या सार्लें प्रसिद्ध झालेली महत्त्वाची अशी ही दोनच नाटके होत. ' बायकांचे बंड ' ह्या गद्य नाटकास यंदा संगीत पहेराव चढविण्यांत आला. या खेरीज आणखी पांच दहा नाटके प्रसिद्ध झाली. श्री. दा. प्र. केतकर यांचें ' हरिहर युद्ध ' हे मेळ्यानें प्रसिद्ध केले व गणपति उत्सवांत त्याचा प्रयोगही झाला. मराठांतील एक विनोदी लेखक श्री. वा. रा. टिपणीस यांचे ' सात्रकार ', श्री. ओक यांचे ' यज्ञमंडप ', ' मजुरांच्या साम्राज्यांत ' इत्यादी कांहीं नाटके नाट्यसमाजाकडून एक दोनदा रंगभूमीवर झळकली. श्री. गंगाधर विश्वनाथ गोखले यांनी लिहिलेल्या ' सैरंध्री ', ' महारवाडा ' इत्यादी छोटीं नाटिका या सार्लें प्रसिद्ध झाल्या आहेत. याखेरीज ' त्याग ' हे औंधच्या दाभाड्यांचे नाटक, ' नवे डोंळे ' हे नाशिकच्या श्री. रहाळकरांचे नाटक, त्याचप्रमाणें कोल्हापुरचे श्री. चव्हाण यांचे शीलसौभाग्य व नागपूरकडील श्री. पंडित यांचे ' सामाजिक सीमोल्लंघन ' हे नाटक शिवाय ' बायकी कावा ' ' समईतील ज्योत ' इत्यादी नाटकेही पुस्तकरूपानें प्रसिद्ध झाली आहेत. श्री. फाटक शास्त्री यांची

‘घरजावई’ इ. नाटके यासार्या प्रसिद्ध झाल्या नाटकांना रंगभूमीवर येण्याचे भाग्य लाभले नाही. नाटके निदान वाङ्मयाच्या दृष्टीने तरी चांगली असावयास लागतात. ही नाटके वाचतांना वाचकाना समाधान होणे नाट्यकृतीच्या विशिष्ट गुणांवर अवलंबून आहे. वरील बहुतेक नाटके वाचूनही आपण कांहीं विशेष चांगले वाङ्मय वाचले असे वाटत नाही. कादंबऱ्या आणि लघुकथा वाचण्याची आवड आहे त्याप्रमाणे नाटके वाचण्याची गोडी वाढल्यास नाटक कंपन्यांची गरज रहाणार नाही व लेखकांच्या कृतीचे समाजाकडून योग्य चीज केले जाईल. पण आज तरी तरी स्थिति नाही ही खेदाची गोष्ट होय. त्यामुळे अनेक लेखक मागे पडले आहेत हे मला ठाऊक आहे. यासार्या नाटकांवर पाहिजे तितकी सविस्तर व चिकित्सक परीक्षणे प्रसिद्धच झाली नाहीत. मात्र ‘घरावाहेर’ ह्या नाटकावर निर्भिडने एक रेशल अंक काढला हे येथे नमूद केले पाहिजे. या अंकातील प्रि. अत्रे यांच्या लेखाबद्दल मागे उल्लेख आलाच आहे. याखेरीज या अंकात एक दोन लेखकांचे लेख वाचनीय आहेत. ‘प्रतिभे’ मध्ये ‘कृष्णावई’ या लेखिकेने ‘घरावाहेर’ या नाटकावर एक चांगला लेख लिहिलेला वाचला; नाट्यसंमेलन झाले; पण त्यांत नाट्यकलेच्या दृष्टीने मार्गदर्शक अशी कांहींच चर्चा झाली नाही. ‘संपूर्ण किलोस्कर’ हे पुस्तक प्रसिद्ध केल्याबद्दल प्रकाशकांचे अभिनंदन केले पाहिजे. अधुनिक नाट्यकलेच्या लोकप्रियतेचे खरे पुरस्कर्ते कै. अण्णासाहेब किलोस्कर यांची सर्व नाटके आतां एकत्रित वाचण्याची चांगली सोय झाली. गेल्यासार्या सूचना केल्याप्रमाणे ‘संपूर्ण कोल्हटकर’ प्रसिद्ध होणार किंवा नाही कळत नाही. त्याचप्रमाणे ‘संपूर्ण गडकरी’ प्रसिद्ध व्हावा असेहि कोणास वाटणार नाही ? महाराष्ट्र-साहित्यसंमेलनांतून नाट्य वाङ्मयाकडे बरेच दुर्लक्ष केले जाते, असे

दिसत आहे. नाही म्हणावयास बडोदें येथील संमेलनांत श्री. य. ना. टिपणीस यांस या विभागाचें अध्यक्षपद देण्यांत आले होते. तात्पर्य, चालू साल नाट्यवाङ्मयाचें दृष्टीनें प्रतिगामी आहे. या विभागाची दौलत वाढली असली तरी श्रीमंती वाढली नाही.

काव्याचा विचार झाला, लघुकथांचा विचार झाला, नाटकांचा विचार झाला, आतां कादंबऱ्यांचा विचार करूं. कादंबरीकार म्हणून प्रो. फडके, श्री. भा. वि. वरेरकर, श्री. वि. स. खांडेकर, श्री. वि. स. गुर्जर आणि श्री. ग. त्र्यं. माडखोलकर हे लेखक विशेष प्रसिद्ध आहेत. उमरावतीस असलेले श्री. बालकृष्ण संतुराम गडकरी यांची 'वृंदा' ही कादंबरी प्रसिद्ध झाली; पण ती अपूर्ण आहे. श्री. गडकरी यांचा कांहीं ठिकाणीं प्रख्यात लेखक म्हणून उल्लेख केलेला वाचला; पण ही कादंबरी वाचून त्यांच्या अंगां कादंबरीकारास अवश्य असलेले गुण नसावेत असा माझा समज झाला आहे. विद्या-संपादनार्थ पाश्चात्य देशांत जाणाऱ्या हिंदी तरुणांची मनोभूमिका कशा प्रकारची असावी याचा आदर्श दाखविण्याच्या उद्देशानें 'वृंदा' ही कादंबरी लिहिण्यांत आली आहे. या कादंबरीचे कथानक विविध घटनात्मक असले तरी वाचकांना त्यामुळे नवीन असे कांहीं वाटणार नाही. शिवाय मानसशास्त्राचे साधे नियमही कांहीं ठिकाणीं न पाळले गेल्यामुळे अनेक ठिकाणीं प्रबुद्ध वाचकांचा विरस होतो. अलौकिकता ही ध्येयनिदर्शनाचे हेतूनें लिहिलेल्या कादंबरींत असल्यास तो दोष नव्हे असें कादंबरीकारांनीं आपल्या प्रस्तावनेंत लिहिले आहे. क्षणभर हे विधान मान्य केले तरी नैसर्गिक नियम हे कांहीं इतक्या अपाठ्यानें बदलतात असें वाटत नाही. सूर्यही पूर्वीपेक्षां कांहीं अंशानें जेथे कळला तेथे नैसर्गिक रचनाही बदलू शकेल, पण ती लेखकाच्या कल्पनासृष्टींत येण्याइतकी खास जवळची नाही. 'वृंदा' हीचे जे थोडेसे चरित्र या भागांत

आले आहे, त्यावरून ती आदर्श महिला मानावयास कोणी तयार होईल काय ? श्री. गडकरी हे आपणास हरी नारायण आपटे यांच्या परंपरेतील समजत असतात. पण हरीभाऊंचे अनुकरण केवळ विस्तृत विवेचन व कथानकाची लांबण एवढ्या पुरतेच त्यांनी केलेले दिसते. ही कादंबरी बरीच मोठी आहे. छपाई विशेष चांगली नाही. यांतील कथानकांतील हालचाली विलायतेंत झाल्याचे दाखविले असल्याने कादंबरीच्या ह्या पूर्वार्धास 'विलायतखंड' असे मानण्यांत आले आहे. पाश्चिमात्य वातावरणाचे बरेचसे चित्रण डॉ. केतकरांच्या एका कादंबरींत आले होते. तेथील हालचालीचे वर्णन करणारी 'वृंदा' ही मराठीमधील दुसरी कादंबरी होय. प्रो. फडके यांची 'उद्धार' ही कादंबरी या सारली प्रसिद्ध झाली. ही कादंबरी 'किलॉस्कर' मासिकांतून क्रमशः येत होती. खपाच्या दृष्टीने या सारली 'उद्धार' कादंबरीचा दुसरा नंबर लागतो. प्रो. फडके यांचे बहुतेक ललितकलात्मक लेखन तरुणतरुणींच्या हंसण्या-खिदळ्याचें म्हणजे प्रणयात्मक असते. या कादंबरींतील कांहीं प्रसंग अश्लील असल्याची ओरड झाली होती. प्रो. फडके यांचे बहुतेक गुण-दोष याही कादंबरींत आले आहेत. ही कादंबरी लेखकाने कुमारी रत्नप्रभा रणदिवे हीस प्रीतीपूर्वक अर्पण केली आहे. 'उद्धार' या कादंबरींतील पात्रांचे मनोविश्लेषण मात्र शास्त्रशुद्ध दिसते. आणि त्या दृष्टीने विचार केला, तर पात्रांचा स्वभाव-परिपोष व कृतींचा एकमेकाशी संबंध प्रो. फडके कौशल्याने खुलवितात हे जितके खरे तितकेच ते वर्णन शरीरशास्त्र व मानसशास्त्र यांचे अध्ययन करून लिहीलेले असते हेही खरे होय. तरुण आणि तरुणी अथवा यांच्यांतील प्रणयप्रसंग व प्रणयविचार इतक्या शास्त्रशुद्धतेने कादंबऱ्यांतून मांडणारे प्रो. फडके हेच मराठींतील पाहिलेले कादंबरीकार होत.

‘ नंदादीप ’ ही प्रो. य. ग. नाईक यांची एक मोठी कादंबरी या साली प्रसिद्ध झाली आहे. ‘ विद्यार्थी ’ या टोपण नांवाने एका काळी लघुकथा लिहिणारे म्हणून प्रो. नाईक कित्येकांच्या परिचयाचे असतील. त्यांची ही कादंबरी अनेक दृष्टीने वाखाणण्यासारखी आहे; मात्र या कादंबरीतील काहीं प्रसंग व पात्रे अस्वाभाविक भासतात; त्याला लेखकाने उत्तर दिले आहे की, काल्पनिक गोष्टीत अशक्य गोष्टी संभवनीय दाखविणे हेच लेखकाचे काम असते. पण हे विधान मात्र पटत नाही. अशक्य गोष्टी संभवनीय दाखवावयाच्या तर स्वभाव परिपोष व रचनाचातुर्य वगैरे विशिष्ट नियम यापुढे जाळूनच टाकावे लागतील. प्रो. नाईक यांनी आपल्या विधानांची एकदा सविस्तर चर्चा केली तर बरे होईल. प्रो. नाईक यांनी आपले लेखन सतत चालू ठेवले तर त्यांना लेखकाचा लौकिक दुर्मिळ नाही. सुप्रसिद्ध लेखक श्री. वि. सी. गुर्जर यांची ‘ संगम ’ या नांवाची एक कादंबरी पुण्याच्या मॉडर्न बुक डेपोने प्रसिद्ध केली आहे. ही कादंबरी डॉ. रविंद्रनाथ टागोर यांच्या ‘ योगायोग ’ या उपन्यासाचा अनुवाद होय. श्री. गुर्जर भाषांतर अथवा रूपांतर करण्यांत इतके प्रवीण आहेत की त्यांची कोणतीही कादंबरी घ्या तीत भाषेचा ओघ कोठेच अडखळल्यासारखा वाटत नाही. साधी-सापी रचना करण्यांत श्री. गुर्जर हे तरेबरे आहेत यांत शंका नाही. परवाङ्मयातील उत्कृष्ट पुस्तकांचे अनुवाद मराठीतून होतील तितके बरे. या दृष्टीने ‘ संगम ’ ही कादंबरी लिहिल्याबद्दल मी श्री. गुर्जर यांचे मी अभिनंदन करतो. अनुवादाची योग्यता कमी नव्हे व मराठीत कलावंत अनुवादक जितके निर्माण होतील तितके तूर्त पाहिजेत. बंगाल व ङ्मयाचा हा एक नमुना वाचकांनी सवडीप्रमाणे एकाच वाचण्यासारखा आहे. त्याच प्रमाणे ‘ कथाकदंब ’ या नावाचा टागोर यांच्या गोष्टींचा संग्रहही वाचावा. अनुवादात्मक व स्वतंत्र

लेखन या संवर्धीं आरंभीं गुर्जरानीं काढलेले उद्गार सर्वस्वी खरे आहेत.

‘ आत्मदान ’ या श्री. के. आर. पुरोहितांच्या कादंबरीचा उल्लेख केला पाहिजे. केवळ लेखनावर संसार करणारे मराठीत जे लेखक आहेत त्यापैकी श्री. पुरोहित होत. आतापर्यंत त्यांच्या तीन चार कादंबऱ्या प्रसिद्ध झाल्या. त्या वाचल्या म्हणजे श्री. पुरोहित यांचे या लेखन प्रांतातील स्थान निश्चित समजते. समाजातील हरघडी दृष्टीस पडणाऱ्या सामाजिक चित्रांचे नमुनेदार मिश्रण करून त्यावर कादंबरी लिहीण्याचे कसब श्री. पुरोहित यांच्या आंगी असलेले दिसते. पूर्वीप्रमाणेच ‘ आत्मदान ’ या कादंबरीत लेखकाची शुद्ध व ओघवती भाषा वाचतांना वाचकांची भरपूर करमणूक झाल्याखेरीज रहाणार नाही. श्री. पुरोहित हे मराठीतील आजचे एक लोकप्रिय कादंबरीकार आहेत; मात्र ही कादंबरी छपाईच्या दृष्टीने इतर कादंबऱ्या इतपत तरी चांगली निघावयास पाहिजे होती. ‘ अनियमित जग ’ इत्यादी कादंबऱ्यांनी प्रसिद्धीस आलेल्या लेखिका कुमारी कुमुदिनी प्रभावळकर बी. ए. यांची ‘ निर्माल्यातील कळी ’ या नावाची एक कादंबरी या साली प्रसिद्ध झाली आहे. या कादंबरीचे कथानक केश्याव्यवसायविषयक असले तरी त्यांत अनेक दोष आहेत व त्यामुळे ही कादंबरी कु. प्रभावळकरांच्या इतर कादंबऱ्यांप्रमाणे उतरली नाही. प्रचारात्मक भाग बराच असल्याने व काहीं प्रसंग लेखिकेला वर्णन करणेच कठीण असल्यामुळे ही कादंबरी वाचताना जरासा कंटाळाच येतो. श्री. दत्त रघुनाथ कवठेकर या नावाचे एक लेखक कादंबरीकार म्हणून या साली उदयास आले. त्यांची ‘ विखुरलेले प्रेम ’ ही कादंबरी पहिलीच असून सरस आहे यांत शंका नाही. दोन तरुणांवर प्रेम बसले असता तरुणांच्या मनाची होणारी मनस्थिती व वर्तन यांचे चित्रण श्री. कवठेकर यांनी खरेच चांगले केले आहे. विषय रम्य व तितकाच

महत्वाचा असला तरी या विषयावरील कादंबरीच्या कथानकाचा शेवट कसा करावा व आज नाही तरी भविष्यकाळीं हा प्रश्न कसा साडला जाईल याचा निकाल आज देणें कितीतरी कठीण आहे. आणि या कठीण प्रश्नाला बगल देण्यास उत्तम उपाय म्हणजे नायिकेला आपल्या वर्तनाचा होणारा पश्चाताप दाखविला म्हणजे काम झाले ! श्री. कवठेकर यांनीं तेंच केले आहे. पण पश्चातापदग्ध नायिका दाखविल्याने उदात्तपणा कादंबरींत आणता आला तरी तें समाजाचे मात्र चित्र होत नाहीं. उलट अशी पश्चातापाने झुरणारी स्त्रीच सहसा दिसावयाची नाहीं. या कादंबरींतील मुख्य नायिका शालन हिची मनस्थिती लेखकानें चांगली रंगवून आदर्श शेवट केला आहे हें खरें, पण नवमतवादा-साठी नव्हे तर सत्यकथनाचे दृष्टीनें समाजांत या उलटच वागणाऱ्या अनेक व्यक्ति दिसत असतात त्याचा विचार लेखकानें केला नाहीं. शिवाय या कादंबरीचा दुसरा पण महत्वाचा दोष म्हणजे कादंबरी निष्कारण लांबली आहे. नव्या लेखकांकडून हा दोष हटकून घडतो. श्री. कवठेकरांच्या पुढील कृतींतून हें वैगुण्य आढळणार नाही अशी आशा वाटते. मात्र श्री. कवठेकर या लेखकाबद्दल मला मोठी आशा आहे.

अहमदनगर येथील वाङ्मयोपासक मंडळानें 'स्नेहबंधन' ही एक कादंबरी प्रसिद्ध केली. कादंबरी मोठी आहे एवढाच ह्या कादंबरीचा विशेष होय. कादंबरीच्या विषयाचे महत्व मात्र मोठे आहे. त्या शिवाय 'विरलेले वस्त्र' ही सदाशिव अडव्होकेट यांनीं लिहिलेली कादंबरी 'हृदयाचे कढ' ही एका लेखिकाची कादंबरी, 'विलक्षण चौर्य' ही श्री. गो. गं. पोतदार यांची कादंबरी 'दुहेरी संसार' ही श्री. चं. ग. दिक्षीत यांची कादंबरी इत्यादि पुस्तकांची या विभागांत भर पडली. 'जाळ्यांतील माशा' ही श्री. हडप यांनीं

बुवाबाजीवर एक कादंबरी प्रसिद्ध केली. परचुरे पुराणिक आणि संडळीने आपल्या कादंबरीमय पेशवाईचा पुढील भाग या सार्ळी प्रसिद्ध केला नसला तरी सांगलीचे एक लेखक श्री. साधुदास यांच्या ऐतिहासिक कादंबरीमालेचे दुसरे पुष्प ' मराठेशाहीची वद्यप्रतिपदा ' ह्यासार्ळी प्रसिद्ध झाले. श्री. हडप यांच्या कादंबऱ्या-पेक्षां ही कादंबरी अधिक सरस असून इतिहासाला धरून लिहीण्याचा अभिनंदनीय प्रयत्न केला आहे. मात्र हडपांच्या भाषेचा चटकदारपणा या कादंबरीतून नाही. श्री. साधुदास यानी ही माला मात्र पुरी केल्यास वरेंच उपयुक्त कार्य होईल. साधुदास हे सांगलीचे रहिवाशी व सांगली दरवारचे राजकवि आहेत. असा विद्वान साहित्यिक सांगली येथे असणे हे सांगलीस एक भूषण होय. सांगलीच्या राजेसाहेबांनी मनांत आणल्यास साधुदासांची ही ऐतिहासिक कादंबरीमाला दरवारमार्फत अथवा खाजगीतून प्रसिद्ध करण्यास कांहीं अडचण भासणार नाही.

भारतगौरवग्रंथमालेतर्फे प्रसिद्ध झालेली 'पराधीन' ही कादंबरी चांगल्यापैकी आहे. स्त्रियांना अस्तित्वात असलेल्या कायद्यांत कोणते हक्क आहेत हे समजून घेण्यास या कादंबरीचा फार उपयोग होईल. ही कादंबरी बडोद्याचे वकील श्री. वासुदेव विनायक जोशी यानी लिहिली आहे एवढे सांगितले म्हणजे त्यांतील विषयाचे प्रतिपादन किती बिनचूक झाले असेल ह्याची मराठीच्या वाचकाना पुन्हां ओळख करून देण्याचे कारण नाही. कथानकाची गुंफणही साधी असून चटकदार आहे. श्री. भा. वि. वरेरकर यांची ' उघड झांप ' ही कादंबरी मुंबईच्या रामकण्ठ बुकडेपोने प्रसिद्ध केली. स्त्रीस्वातंत्र्याच्या नांवावर उनाड व चवचाल स्त्रीपात्रे निर्माण करण्याचे मनोवांच्छित कार्य लेखकाने याही कादंबरीत साधले आहे. पुरुष हलकट व स्त्री तेवढी निष्पाप हे पुन्हा पुन्हा दाखविण्यांत ज्याने

आपली लेखणी आयुष्यभर अजिजवली असे श्री. वरेरकर हेच एक कलावंत लेखक मराठीत आहेत. पुरुष समाजावर लेखकाने वेळोवेळी ओढलेले कोरडे खरे मानले तरी त्यांतून स्त्री निष्कलंक सुटते हे सांगण्याचा हृद्दहास निःसंशय एकतर्फी होय. 'उघडआप' ही कादंबरी लिहिण्यांत लेखकाने इतका निष्काजीपणा दाखविलेला दिसतो की त्यामुळे पुढील पुस्तक लोक आवडीने घेणे जरा कठीणच. वेळ मारून नेणे हीसुद्धा एक कला असली तरी लेखन कलेशी तिचे वैर आहे हे मी श्री. भा. वि. वरेरकर यांच्या निदर्शनास आणतो. कादंबरी विभागांत वर दिलेल्या पैकीं दोन तीन कादंबऱ्यांचे काय त्या महत्वाच्या आहेत. 'भंगलेले देऊळ' ही एक चांगली कादंबरी श्री. माडखोलकर यांनी लिहिली. 'सम्राट अशोक' ही लोकप्रिय कादंबरी आतांपर्यंत मिळत नव्हती. या सारी तिची दुसरी आवृत्ती छापली. या कादंबरीचे लेखक श्री. शहा यांच्यांत कादंबरीकाराचे बरेच गुण आहेत. ते पुन्हा लिहू लागतील तर या विभागांत चांगली भर पडेल. 'उषा' नावाची कादंबरी प्रसिद्ध करण्याचे त्यांनी जाहीर केले आहे. 'विरलेले स्वप्न' हे प्रसिद्ध लेखिका विभावरी शिखरकर बी.ए. हिचे पुस्तक या सारीं प्रसिद्ध झाले आहे. या पुस्तकाचाही खूप जवळजवळ 'उद्धार' या कादंबरी इतकाच झाला. ही एक संपूर्ण भावकथा असून अभिनव पद्धतीने लिहिली आहे. मेचके शब्द वापरावयाचे हा एक महत्वाचा गुण या भावकथेत दिसून येतो. या सारीं प्रसिद्ध झालेल्या ललितवाङ्मयांत या पुस्तकाचा नंबर पहिला लागतो यांत शंका नाही. काहीं वाचकांना हे स्वप्न आवडले नाही आणि तसे होणे शक्य आहे; कारण या पुस्तकांतील आचार व विचार प्रदर्शित करण्याची रीत भारदस्त व उच्च अभिरुचांच्या आणि उच्च विचारांच्या लोकानांचे अधिक रम्य वाटेल.

मराठीत चरित्रें व तीही चटकदार व उद्बोधक अशी वीणी लिहिलीच नाहीत. चरित्राविभागांत मराठीवाङ्मय बरेच मागे आहे. याचे विस्तृत समालोचन प्रो. बिनहट्टी यांनी याच साली प्रसिद्ध झालेल्या ' अर्वाचीन मराठी साहित्य ' या पुस्तकांत केले आहे. शक्य असेल त्याने ते एकवार दृष्टी घालून अवश्य घालावे. या साली त्यांतल्या त्यांत चांगलें असे ' अराविंदबाबू घोष ' यांचे चरित्र प्रसिद्ध झाले. हें चरित्र श्री. पु. बा. कुळकर्णी यांनी लिहिलेले आहे. श्री. कुळकर्णी यांना चरित्र लेखनाची बरीच आवड असल्याने त्यांचे पुस्तक श्रमपूर्वक लिहिलेले असते. पंडित यांचे चरित्र श्री. कर्नाटकी यांनी प्रसिद्ध केले. ' गोविंदसुता ' चे चरित्र प्रसिद्ध झाले आहे. केशव भिकाजी ढवळे यांनी रिसायतकार रावसाहेब सरदेसाई यांच्याकडून शहाजी, शिवाजी व संभाजी यांची छोटी चरित्रें लिहून घेतली आहेत. चरित्रात्मक वाङ्मयांत या साली लक्ष्मीबाई टिळक यांनी लिहिलेल्या ' स्मृति चित्रांच्या ' दोन्ही भागास अग्रस्थान दिले पाहिजे. कविवर्य टिळकांचे चरित्र या विभागांत संपूर्ण करण्यांत आले आहे. सरळ व सोपी भाषा, आकर्षक लेखनशैली व चटकदार मांडणी या मुळें हे तिन्ही भाग मराठी वाङ्मयास भूषणभूत होऊन राहतील यांत शंका नाही. ' संगीत शास्त्रकार व कलावंतांचा इतिहास ' हें या साली श्री. ल. द. जोशी यांनी लिहिलेले पुस्तक एका दृष्टीने अपूर्व होय. या पुस्तकांत शास्त्रकार, ग्रंथकार, धृपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, लावणी वगैरे सारख्या चांजा गाणारे कलावंत व बीन, सतार, सुरसिंघार, रबाब, जलतरंग हार्मोनियम, पखवाज, तबला वगैरे वाद्ये वाजविणारे वादक आणि नृत्यकलेंत नांव मिळवणारे नर्तक अशा सुमारे ४५० वर व्यक्तींच्या चरित्रांचा समावेश झाला आहे. अशा प्रकारचे चरित्रात्मक माहिती देणारे मराठीतील तरी हेंच पहिले पुस्तक होय. संगीत

शास्त्रावर मराठीत नांव घेण्यासारखी पुस्तके नाहीत. ' भारतीय संगीत ' या नांवाचे एक नियतकालिक अळीकडे निघू लागले आहे. या मासिकाच्या द्वारे संगीत शास्त्रावर पुस्तके प्रसिद्ध होतील तर बरे होईल. वरील मासिक भारत गायन समजातर्फे निघत असल्याने समाजाला अशी पुस्तके प्रसिद्ध करणे कठीण जाणार नाही असा समज आहे. या समाजांत अनेक संगीतकलाकोविद व संपन्न लोक आहेत; त्यांनी माझ्या या सूचनेचा अवश्य विचार करावा.

महाराष्ट्र भाषाभूषण ज. र. आजगांवकर यांनी लिहिलेली दोन चरित्रे प्रसिद्ध झाली. ' श्रीसमर्थ चरित्र ' हे केशव भिकाजी ढवळे यांनी व ' तुकाराम चरित्र ' श्री. मंगेश नारायण कुळकर्णी यांनी प्रसिद्ध केले आहे. श्री. आजगांवकर हे संतवाङ्मयाचे अभ्यासी म्हणून प्रसिद्ध आहेत. तेव्हा त्यांच्या चरित्रातून भावभक्तिपूर्वक विचार झाला असेल हे निराळे सांगायचास नकोच. या खेरीज बर्नाड मॅकफेडन, सखाराम बापू, केमालपाशा, बालगंधर्वांच्या नवल-कथा इत्यादी कांहीं चरित्रात्मक पुस्तके प्रसिद्ध झाली आहेत. श्री. देशपांडे यांचे ' आद्य मराठी कवियत्री ' प्रोफेसर कोलते यांचे ' भास्करभट्ट बारीकर ' व पुण्याचे रा. लेले यांनी लिहिलेले 'दुर्देवी मोहरे' या पुस्तकांचा विभागांत उल्लेख केला म्हणजे सदर विभागाची माहिती पूर्ण होते.

या खेरीज महत्त्वाची अशी कांहीं पुस्तके निघाली. त्यांचा स्वतंत्रपणे उल्लेख करणे जरूर आहे; ' महाराष्ट्राचा प्राचीन इतिहास ' हा डॉ. केतकर यांनी एक मोठा ग्रंथ लिहावयास घेतला असल्याचे वाचकांना ठाऊकच असेल. ह्या ग्रंथाचा एक भाग शालिवाहान पर्व (पूर्वार्ध) म्हणून प्रसिद्ध झाला. ह्या ग्रंथावर ' प्रतिभे 'त मधूनसूदनसरस्वती यांचेच काय ते म्हणण्यासारखे परीक्षण आले. या विषयाचे ज्ञाते मराठीत एका हाताचे बोटावर मोजण्याइतकेही

भरणार नाहीत. आणि त्याचमुळे अशा ग्रंथावर टीका अथवा परीक्षणं करण्यास कोणी पुढें येत नाही. डॉ. केतकर यांच्याकडून संकल्पित भाग शक्य तितक्या लवकर प्रसिद्ध होतील तर मराठीत महत्वाच्या ग्रंथाची भर पडणार आहे. ह. भ. प. श्री. लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर यांनी लिहावयास घेतलेल्या 'मराठी वाङ्मयाच्या इतिहासा'चा दुसरा खंड चाळू सालीच प्रसिद्ध झाला. श्री. पांगारकर यांनी वाणी जितकी गोड तितकीच लेखणीही मधूर असते.

मराठी वाङ्मयाचा इतिहास लिहिण्याचा हाच पहिला व मोठा प्रयत्न होय. श्री. पांगारकर यांच्याकडून तो संपूर्ण व्हावा असे कोण इच्छिणार नाही! मात्र कांहीं कांहीं ठिकाणी द्विरुक्ती झाली आहे. तीन तपापेक्षां अधिक काल मराठी भाषेची सेवा करणाऱ्या या निगवीं, भोळ्या, व सत्शील विद्वानाची अद्याप साहित्यसंमेलनाची अध्यक्षस्थानी निवड होऊं नये ही किरीतरी आश्चर्याची गोष्ट होय. एक रागिणी कादंबरी आणि एक नीतिशास्त्रावर ग्रंथ लिहिल्याने रा. जोशी अध्यक्ष होऊं शकतात. वर्तमानपत्रांतून टीकात्मक व चर्चात्मक असे दहावीस लेख लिहिल्याने रा. माधव श्रीहरी अणे अध्यक्ष होऊं शकतात, साहित्यपरिषदेचा संसार आपलेपणानें पहातात म्हणून सरदार माधवराव किव्रे अध्यक्ष होऊं शकतात, पण ज्यांनीं तीन तपापेक्षां अधिक काल वाङ्मयाची सेवा केली असे श्री. लक्ष्मणराव पांगारकर यांचे नांव अध्यक्ष म्हणून सुचविलेंही जाऊं नये ही अत्यंत खेदाची गोष्ट होय. एकच ध्यास व एकच विषय घेऊन त्याच्यामार्गे तनमनवन खर्च करणारे श्री. पांगारकर यांच्यासारखें मराठीत कितीसे ग्रंथकार आहेत? हा एकच विषयाचा छंद त्यांना वस्तुतां भूषणावह असतां इतरांच्या दृष्टीनें मात्र तो महत्वाचा वाटूं नये ही आश्चर्याची गोष्ट होय. संतवाङ्मयाचे शोधन, प्रकाशन व विवेचन ही वाङ्मयसेवा नव्हे कीं काय? पांगारकरां-

सारखा, मोरोपंत व तुकाराम यांचे चरित्रग्रंथ लिहिण्याइतका कितीशा विद्वानांचा अभ्यास आहे ? आणि आतांपर्यंत जे दोन भाग प्रसिद्ध झाले ते लिहिण्यास समर्थ असे तरी किती लेखक महाराष्ट्रांत आहेत ? पण अध्यक्ष व्हावयासाठीं सभोवतीं शिष्य किंवा भक्तगणांचे कडे करण्याची पांगारकरांना हौस नाही हा त्यांचाच दोष ! श्री. पांगारकर यांच्याकडून हें इतिहासलेखनाचे कार्य होत आहे ही बरीच समाधानाची गोष्ट होय. कारण आरंभीचें वाङ्मय बहुतेक संत लोकांनीं लिहिलें व या वाङ्मयाचा ज्यांचा अभ्यास आहे असे आपल्यांत दोनतीनच विद्वान लेखक आहेत. त्यांत पांगारकरांची योग्यता मोठी आहे. हा इतिहास लिहितांना जे वादग्रंथ प्रश्न आहेत त्यांची माहिती टीपांतून जागोजागीं दिली असती तर अधिक बरें होते. पुढील भाग लिहितांना पांगारकरांनीं या सूचनेचा अवश्य विचार करावा.

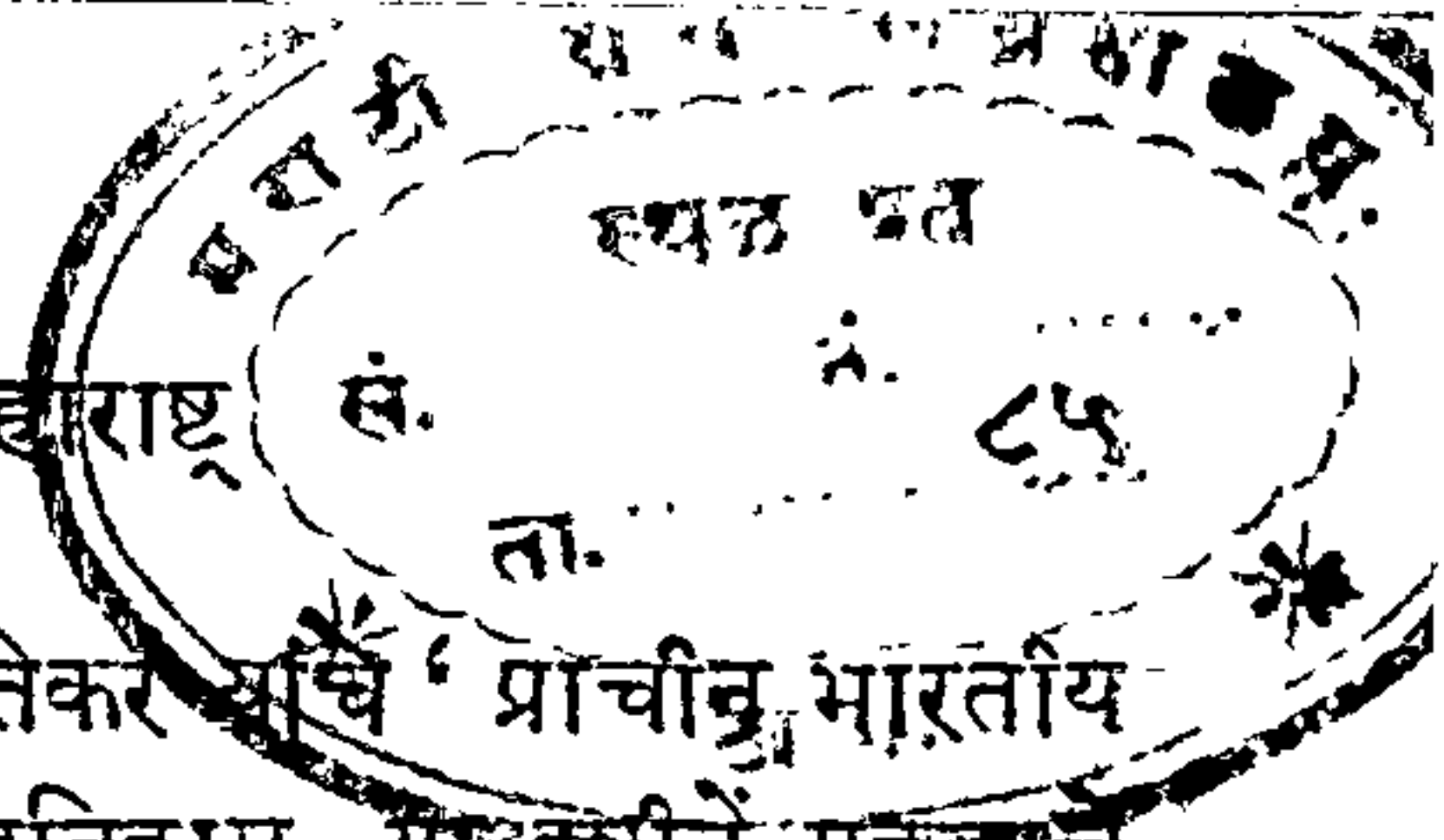
‘ विज्ञानबोध ’ ह्या ग्रंथाला एका दृष्टीनें फार महत्व आहे. हा ग्रंथ न्यायमूर्ती माधवरावजी रानडे यांचे वाङ्मयस्मारक म्हणून प्रकाशित करण्यांत आला आहे. मागें मी सांगितलेच आहे कीं इंग्रजीतील उत्तमोत्तम ग्रंथांची जितकी भाषांतरे प्रसिद्ध होतील तितकी पाहिजेत. त्याचप्रमाणें आम्हास आधिभौतिक प्रगतीचे ज्ञान करून घेणे अवश्य असल्यामुळें ह्या वाङ्मयाचाही सर्वांना परीचय झाला पाहिजे. या हेतूनेंच प्रो. श्रीपाद महादेव माटे यानी हा ‘ विज्ञान बोध ’ ग्रंथ निरनिराळ्या तज्ञांकडून लिहून घेऊन अल्प किंमतीला विक्रीस ठेवला. या ग्रंथाला श्री. माटे यांनीं एक अतिशय उद्बोधक व विस्तृत प्रस्तावना लिहीली असून त्या प्रस्तावनेतील विचारसरणी कोणासही मान्य करावीच लागेल. लेखकांची मागेंपुढें पहाण्याची दृष्टी इतकी विशाल आहे कीं त्यावरून श्री. माटे हे मोठें इतिहासकार होऊं शकतील असें वाटतें. ही प्रस्तावना स्वतं-

त्रपणें छापावी अशी माझी सूचना आहे. प्रो. माटे यांचा दुसरा महत्वाचा व अभिनंदनीय उद्योग म्हणजे 'महाराष्ट्र सांवत्सरिका'चे त्यांनी चालवलेले कार्य. हें कार्य लोकमान्य टिळकांचे वाङ्मय स्मारक होय. 'महाराष्ट्र सांवत्सरिक' दरसाल अखंड प्रकाशन होईल अशी कांहीं ठाम योजना श्री. माटे यानी केली तर त्याचे मोठे उपकार होतील. शिवाय या बाबतीत माझ्या अनुभविक दृष्टीस जें वाटते ते लिहीतो: वाचकांचा व प्रकाशकांचा उत्साह आरंभी असतो तो पुढे टिकत नाही. प्रकाशकाला वाटते की आपल्या कामाचे वाचकांकडून चांगले चीज होईल. वाचकांना वाटते पुस्तक चांगले काढले आहे; घेतले पाहिजे; त्यांना नुसते वाटते. प्रत्यक्ष विकत घेणारे लोक कल्पनेपेक्षांहीं कमी असतात. त्यांतूनही आरंभी आरंभी जे ग्राहक लाभतात ते पुढे टिकत नाहीत. व त्यामुळे दरसालचे प्रकाशन दरसाल तोट्यांत येत जाते. आरंभीचा अंदाज चुकतो व नंतर प्रकाशकांचा उत्साह पहिल्याप्रमाणें रहात नाही. 'महाराष्ट्र सांवत्सरिक' या वार्षिक प्रकाशनाचे कामी प्रो. श्री. म. माटे यांना काय अनुभव आला तें मात्र माहीत नाही. पण मी सांगतो तसाच त्यांना अनुभव आला असला पाहिजे. म्हणून असे कार्य हे एकट्याच्या जबाबदारीवर काढणें कठीण असते. या करतां 'महाराष्ट्र सांवत्सरिक' दरसाल प्रसिद्ध केले जाईल अशी कांहीं आर्थिकयोजना प्रो. माटे यांनी करून ठेवावी अशी त्यांना माझी सूचना आहे.

'पेशवेकालीन महाराष्ट्र' हे श्री. वासुदेव कृष्ण भावे यांचे पुस्तकही कांहीं कमी महत्वाचे नाही. यांतील माहिती शक्य तितकी विस्तृत व खरी देण्याचा लेखकांनी प्रयत्न केला आहे. विषय इतका महत्वाचा आहे की पुस्तकांचे वाचन कादंबरी इतके मनोरंजक वाटते. या पुस्तकांत पेशवेकालीन परिस्थिती विषयवार दिली आहे.

या सालीं टीकात्मक अशी दोन पुस्तके प्रसिद्ध झाली. त्या पैकीं हरीभाऊ आपटे यांच्या 'मी' कादंबरीवरील प्रो. तुळपुळे यांचे पुस्तक यापेक्षा अधिक चिकित्सक दृष्टीने लिहिले जावयास पाहिजे होते. श्री सहस्रबुद्धे यांचे 'खाडिलकरांची नाट्यसृष्टी' हे पुस्तक बरेच विस्तृत आहे व त्यांत माहितीही विपुल आहे यांत शंका नाही. पण टीकाकारांही दृष्टी श्री. सहस्रबुद्धे यांच्यांत जरा कमीच असलेली दिसते. त्या मानाने श्री. वारपुरे यांनी कांहीं वर्षापूर्वी प्रसिद्ध केलेले खाडिलकरांच्या नाटकांवरील टीकात्मक पुस्तक अधिक मार्मिक व चिकित्सक आहे.

'अर्वाचीन मराठी साहित्य' हे पुस्तक समालोचनात्मक या दृष्टीने महत्त्वाचे आहे. यांतील लेख निरनिराळ्या तज्ञांकडूनच लिहून घेतले आहेत. लेखकांनी मधूनमधून केलेली कांहीं विधाने अमान्य होतील अशी असली तरी निरनिराळ्या विषयांचे एकत्रित समालोचन पहावयास हा ग्रंथ उपयोगी पडेल. हा ग्रंथ श्रीमंत सयाजीराव महाराज गायकवाड यांच्या रजतमहोत्सवानिमित्त प्रसिद्ध करण्यांत आला आहे. मराठी भाषेच्या अभ्यासकांना व टीकाकारांना हा ग्रंथ संग्रहणीय वाटेल. 'मानस मंदिर' हे प्रो. फडके यांचे पुस्तक स्वतंत्रपणे प्रसिद्ध झाले. 'संसार आणि धर्म साधन' हे श्री. द्र. गो. वैद्य यांचे पुस्तक, डॉ. खैर यांचे 'समाजक्रांती आणि हिंदुस्तान' श्री. दिवेकर शाखांचे 'ब्रह्मज्ञान आणि बुवाबाजी' इत्यादी आणखी कांहीं पुस्तके प्रसिद्ध झाली. 'बुवाबाजी' हा जसा समाजांत एक धंदा आहे त्याचप्रमाणे 'बुवाबाजी विध्वसन' हाही एक नवा धंदा शास्त्री बुवांनी सुद्धं केला. दिवेकर यांचे लेखन पळेदार असले तरी विवरण भ्रामक असते. वरील पुस्तकांने मात्र त्यांच्या पोटापाण्याची या वर्षापुरती सोय झाली. कु. मैना शहाणे आणि डॉ. आळतेकर यांची दोन शिक्षण विषयक पुस्तके



प्रसिद्ध झाली आहेत. पैकीं डॉ० आळतेकर यांचे 'प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति' हे पुस्तक शैक्षणिक इतिहास या दृष्टीने महत्त्वाचे आहे.

'हिंदूसमाजदर्शन' हे एक प्रासंगिक पुस्तक असले तरी सामाजिक इतिहास लिहीणाऱ्यास या पुस्तकाचा बराच उपयोग होईल. मात्र हे पुस्तक यापेक्षां आधिक उपयुक्त व्हावयास पाहिजे होते. प्रयत्न अभिनंदनीय असल्याने या पुस्तकाचा उल्लेख केला आहे. मराठीत चित्रकला व तिच्यासंबंधी माहिती देणारे पुस्तके नाहीत. अशा स्थितीत औंधचे श्री. दाभाडे यांनी 'भारतीय चित्रकला' हे पुस्तक लिहील्याबद्दल त्यांचे अभिनंदन केले पाहिजे. याखेरीज ज्योतिष, आरोग्यशास्त्र व धर्मशास्त्र विषयक थोडी पुस्तके निघाली आहेत. मुंबईचे सुप्रसिद्ध पंडित प्रो. पां. वा. काणे यांचे 'धर्मशास्त्र विचार' हे पुस्तक महत्त्वाचे आहे, सुलभ राष्ट्रीय ग्रंथमालेने प्रसिद्ध केलेले 'हिंदूधर्माची मूलतत्वे' हेही पुस्तक संग्रहणीय आहेत. प्रवासवर्णनपर अशी प्रो. गो. चिं. भाटे यांची 'आमची पायगाडीची सक्करे' 'कोरलचे वर्णन व वृत्तांत' इत्यादी पुस्तके प्रसिद्ध झाली. कै. हरी नारायण आपटे यांचे करमणूकीतील कांहीं निबंध स्वतंत्र पुस्तक रूपाने बाहेर आले. आपटेवाङ्मयांत या पुस्तकाने भर पडली.

'आजकालचा महाराष्ट्र' हे एक महत्त्वाचे पुस्तक श्री. पाध्ये व रा. टीकेकर या दोन लेखकांनी लिहून ते भारत कौरवग्रंथमालेने केले. पुस्तकांतील रा. पाध्ये आणि टीकेकर यांनी लिहीलेली प्रकरणे कोणती यांची फोड प्रस्तावनेत केली आहे. या पुस्तकांत सामाजिक व राजकीय विचारांचे समालोचन केले असल्याने अशा प्रकारचा मराठीतील हाच पहिला ग्रंथ होय. यांतील कांहीं विधाने कित्येकांना रुचणार नाहीत व कांहीं विधाने तर एकतर्फी आहेत. आरंभीची तीन प्रकरणे तर लेखकाच्या अपुऱ्या माहितीची

व अपुण्या वाचनाची उदाहरणे होत. ' लोकहितवादी ' ची पत्रे व सरदेसाई यांच्या रियासती यांपेक्षां केवढतरी ऐतिहासिक ग्रंथसंग्रह वाचनीय म्हणून सर्वांनाही मान्य झाला असतां या प्रकरणांच्या लेखकाला त्याचें ज्ञानही असूं नये ही खेदाची गोष्ट होय ! पेशवाईच्या अस्ताची कारणे बहुतेक लोकहितवादींच्या लेखनांवरून ठरवण्यात आली त्या ग्रंथांतील पहिली प्रकरणे काय योग्यतेची समजावी हे वाचकांनींच ठरवावे. मराठेशाहीच्या अस्ताचे इतके बाष्कळ-लेखन प्रकाशकांनीं कसे प्रसिद्ध केले व रा. पाध्ये यांनीं तरी ते कसे समाविष्ट केले याचें आश्चर्य वाटते. शेवटचें प्रकरण मात्र सरस आहे यांत शंका नाहीं. सामाजिक व राजकीय विचाराची दिशा निश्चित करताना बांधलेले तर्क कांहीं प्रसंगीं दुराग्रहाचे वाटतात. या पुस्तकावर टीका करण्याचे हे स्थळ नव्हे; पण एवढे मात्र खरें कीं यापेक्षा अधिक निरीक्षण व मनन करून हा ग्रंथ लिहिला गेला असता तर बरे झाले असते. अशा ग्रंथाची तयारी केवळ चारसहा दिवसांत कांहीं ग्रंथ जमवून व ते झटपट वाचून होत नाहीं. तर अनेक वर्षे त्या दृष्टीनें निरीक्षण व वाचन आणि मनन व्हावयास पाहिजे. याच विषयावर दुसरा ग्रंथ लिहावयाचा झाल्यास ' आजकालचा महाराष्ट्र ' ह्या ग्रंथाचा उपयोग मात्र बराच होईल. श्री. पाध्ये व टीकेकर यांनीं या उपयुक्त व महत्वाचा विषयावर पुस्तक लिहिल्याबद्दल त्यांचे मी अभिनंदन करतो. ' साहित्य आणि समाज जीवन ' ह्या पुस्तकाचा उल्लेख करण्या-इतकेही तें पुस्तक किंमतीचे नाहीं. पण या पुस्तकावर अनुकूल अभिप्राय इतके प्रसिद्ध झाले कीं त्याबद्दल दोन शब्द लिहिणें जरूर आहे. हे पुस्तक मला तर कळेच ना ! अभिप्राय वाचावे तर मन-सुराद स्तुती ! हे पुस्तक इतरांना कळावे व त्यावर स्तुतिपर कौलमचे कौलम प्रसिद्ध व्हावेत आणि मला मात्र त्या पुस्तकांत कांहीं कळेना

व त्यातले जो अनेक ठिकाणी वाङ्मयातील व्यक्तित्वाचा एकच मुद्दा मांडला आहे तो पटेना. म्हणून प्रि. अत्रे यांना हे पुस्तक किती समजले म्हणून विचारले. प्रि. अत्रे यांनी ' सोशॅलिझम ' या विषयाचा नुकताच अभ्यास सुरू केला आहे. ते म्हणाले ' अहो तें पुस्तक मराठी भाषेत लिहिले नाही, मराठी लिपीत लिहिले आहे; त्यानंतर माझे सख्खी व विद्वान कामगार पुढारी श्री. व. म. कार्णिक यांना मी विचारले. त्यांचा अभिप्राय पुढील प्रमाणें पडला. ' या पुस्तकांत ना इतिहासाचे, ना साहित्यशास्त्राचे किंवा मार्क्सवादाचें पुरेसे ज्ञान लेखकाच्या संग्रहातच नाही. झाडावयरील फळ तोडून वेग्याचा प्रयत्न वामन बटू करूं लागला म्हणजे त्याचें जसें हसूं होतें तसेंच आपल्या आवाक्याबाहेरील क्षेत्राला गवसणी घालण्याच्या सुळचट प्रयत्नांत पडून लेखकानें या पुस्तकाच्या वाबतींत कळून घेतले आहे. चार इंग्रजी पुस्तकें व मुंबई सरकारचे तुरुंगखात्याचे रिपोर्टस वाचून ' गुन्हेगार ' लिहावयाचे अगर नवमतवाद म्हणजेच समाजसत्तावाद असें कल्पून समाजसत्तावादावर पाचपंचवीस पानें खरडावयाची होती तोंवर ठीक होते. गुडघाभर पाण्यांत डुबकायला शिकलेल्या माणसानें जागतिक इतिहास व साहित्य यांच्या महोदधींत पोहण्याचा वेडा हट्ट लेखकानें धरलेला आहे. या पुस्तकाच्या वाचनानें मार्क्सवादाबद्दल व मार्क्सवादी साहित्यपरीक्षणा बद्दल वाचकांचें मत कलुषित होण्याचाच जास्त संभव आहे. मार्क्सवाद न कळल्यामुळें व इतिहास आणि साहित्य यांच्या तुटपुंज्या अभ्यासामुळें लेखकानें व्यक्ती, वाङ्मय व ऐतिहासिक घटना यावर प्रदर्शित केलेली मते व त्याविषयीं केलेले विवेचन अनेक ठिकाणीं अपुरे, चुकीचे व बऱ्याच ठिकाणीं धादांत खोटे आहे असें स्पष्टपणें नमूद केले पाहिजे. अर्धसत्य हें सत्यापेक्षाहीं जास्त भयंकर असते या सिद्धांताची जाणीव हें पुस्तक वाचतांना पदोपदी होते. पुस्त-

काची भाषा अतिशय क्लिष्ट व कठीण आहे; विवेचनपद्धति शास्त्रीय नाहीच. अशातऱ्हेचे हें पुस्तक असल्याकारणानें मराठी भाषेत त्यानें चांगली भर पडली आहे असें म्हणता येणार नाही.' श्री. वसंतराव कार्णिक यांचा हा अभिप्राय कोणासही मान्य होईल. चालू सालीं प्रसिद्ध झालेल्या पुस्तकांत सर्वांत दरिद्री पुस्तक जर कोणते असेल तर तें हें 'साहित्य आणि समाजजीवन' पुस्तक होय. कागद व छपाई यांची निरर्थक उधळपट्टी या पुस्तकाइतकी दुसरी आढळत नाही. आणि काहीं न समजल्यामुळेच मला वाटते या पुस्तकावर सर्वत्र स्तुतिपर अभिप्राय आले असावेत. कळत नाही असें सांगणे हे आमच्या अभिप्रायलेखकांन मोठे कठीण वाटत असते. समाज सत्तावादासंबंधीं लोकशिक्षण मासिकांत स्टन्लेवेलस-संवादाचे जे उत्कृष्ट भाषांतर प्रसिद्ध झाले आहे ते वाचून जी कल्पना होते ती कल्पना ह्या पुस्तकाच्या वाचनामुळे लक्षांशानेही होत नाही. वरील संवादाचे भाषांतर 'विद्यासेवक' या लेखकांन फार छान केले आहे. भी जेव्हां 'साहित्य आणि समाजजीवन' हें पुस्तक वाचावयास घेतले त्यावेळीं नेहमींची मांडणी उलटी पालटी करून निरनिराळी अक्षरे पुन्हां पुन्हां छापलेली ही अंकलिपी आहे कीं काय असा मला प्रथम भास झाला.

श्री. प्रियोळकर यांचे 'रुक्मिणी स्वयंवरा' वरील पुस्तक वाखाणण्यासारखे नाही असें कोण म्हणेल ? अभ्यासू वृत्तीचे जे लेखक आपल्यामघें आहेत त्यापैकी श्री. प्रियोळकर हे एक होते. सुप्रसिद्ध विद्वान श्री. वैशनाथ काशिनाथ राजवाडे यांचे निरुक्ताचे मराठी भाषांतर प्रसिद्ध झाले. याखेरीज आणखीही पुस्तके थोडी-फार प्रकाशित झाली असली तरी ती बहुतेक येथे उल्लेख करण्या-सारखी नाहीत.

‘ व्यवहारकोश ’ ह्याचे काम अत्यंत सावकाशपणे चालले आहे. यापेक्षा अधिक व झटपट काम कसे होईल याचा चालकांनी विचार करावा. ‘ शब्दकोशा ’ चे चार भाग प्रसिद्ध झाले. या वर्षी एक भाग निघाला. आणखी दोन भाग बहुधा होतील असे वाटते. ‘ शब्दकोश ’ पुरा झाला म्हणजे मराठी भाषेचे वैभव केवढे तरी वाढणार आहे. ‘ राजवाडे धातुकोश ’ या साली प्रसिद्ध होईल असा माझा अंदाज होता तो खरा ठरला नाही. ‘ चरित्र कोशा ’ची प्रगती का खुंटली ?

साहित्यसंस्थांची वाढ झाली पण जुन्या संस्था पहिल्या उत्साहाने काम करीत नाहीत. त्या दृष्टीने पुण्याच्या ‘ महाराष्ट्र शारदा मंदिराच्या ’ कार्याची स्तुती केली पाहिजे. निरनिराळ्या विषयावर चर्चा, परिचय, स्नेहभोजन, काव्यगायन, सत्कारसमारंभ मंदिरातर्फे करण्यांत आले. माझ्या दृष्टीने संबंध महाराष्ट्रांत याच संस्थेने चांगले काम केले आहे. त्याच्या खालोखाल मुंबईच्या ‘ वाङ्मयचर्चा मंडळा ’ची कामगिरी निर्दिष्ट करण्यासारखी झाली. प्रो. माधवराव आळतेकर हे या मंडळाचे अध्वर्यु आहेत. मुंबई मराठी ग्रंथसंग्रहालयाने या वर्षी हेमंतव्याख्यानमाला चालू केल्याबद्दल मी ग्रंथसंग्रहालयाचे अभिनंदन करतो. अब्बूशाही विध्वंसक मंडळाचा या समालोचनांत उल्लेख करावा किंवा नाही हा प्रश्न आहे. कारण या मंडळाचे कार्य साहित्य विषयापुरतेच मर्यादित नाही; तरीपण कांहीं बाबतींत निषेध करण्याचे काम या मंडळाने केले आहे ! ‘ मुंबई मराठी साहित्य संघ ’ मुंबई येथे स्थापन झाला आहे. पण या साली कांहीं कार्य झाले नाही; पुढे होईल अशी आशा वाटते. कोल्हापुर येथे व पुणे येथे या साली कांहीं साहित्यमंडळे निघाली आहेत. काम पाहून त्यांचा उल्लेख करूं. महाराष्ट्रांत ठिकठिकाणी साहित्यसंघ निर्माण होतील तेवढे उत्तम; पण कार्य झाले पाहिजे व ठरीव कार्यक्रम

असला तरच उत्तम कार्य होईल. सांगलींतील साहित्यिकांचा पूर्वीचा उत्साह मावळलेला दिसतो. 'देवलकृष्ण'कडून पहिल्यासारखे काम होत नाही.

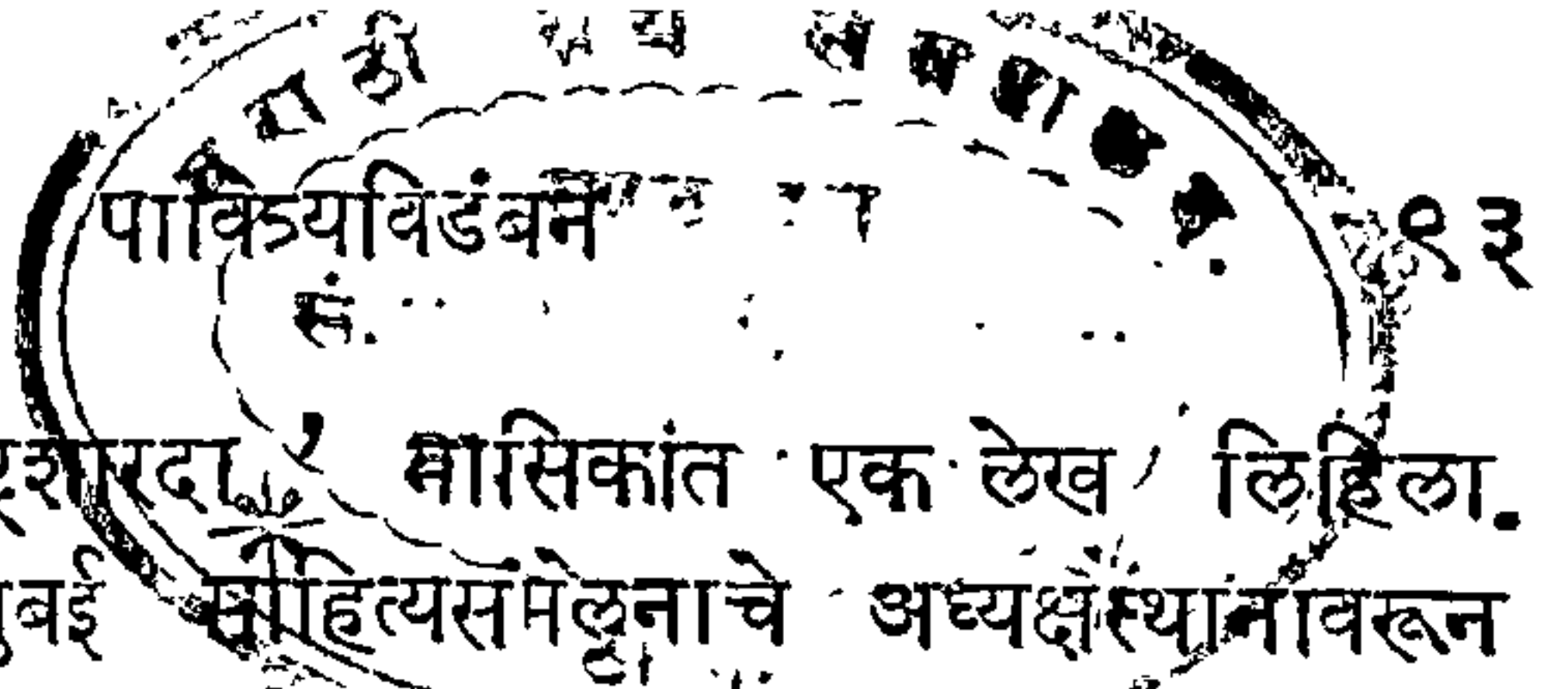
असो, या सालांतील महत्वाच्या पुस्तकांचा हा आढावा येथे संपला. कांहीं पुस्तके नजर चुकीने राहून गेली असल्यास त्या त्या पुस्तकांच्या लेखकप्रकाशकांनी राग करूं नये. कांहीं पुस्तके मला उल्लेखनीयही वाटली नाहीत, बालवाङ्मयाची प्रगती होतच नाही असे दिसते. 'मुलांचे मासिक' 'आनंद' 'खेळगडी' आणि 'बालबोध मेवा' अशी चारच मासिके मुलांसाठी म्हणून साधारणपैकी निघत आहेत. या मासिकांचा उल्लेख मागे मी मुद्दामच केलेला नाही. या खेरीज मुलांसाठी म्हणून उद्बोधक व आकर्षक पुस्तके व्हावयास पाहिजेत. पण तिकडे कोणाचेच लक्ष नाही. चित्रशाळा प्रेस, रा. तुकाराम पुंडलीक शेठे, ढवळे, मिसाळ इत्यादी कांहीं प्रकाशकांनी या साली पुस्तके नेहमीच्या पद्धतीप्रमाणे प्रसिद्ध केली असली तरी त्यांचे महत्व वाळूच्या ढिगाऱ्यांत आणखी मूठभर वाळूच ओतल्या-सारखे होय. मासिकांतही अद्याप किततीतरी सुधारणा व्हावयास पाहिजे. मराठीतील या मासिकांपेक्षा हिंदी भाषेत निघणारी मुलांची मासिके अधिक आकर्षक व संप्रहणीय असतात. मुलांच मोठे व जुने असे 'आनंद' मासिक; पण त्यांत सुधारणा कांहीं झाली काय ? पुण्यांतोळ एका शिक्षणशास्त्रज्ञाने या मासिकांसंबंधी जे उद्गार काढले ते मला पुन्हा पुन्हा आठवतात. त्यांचे म्हणणे असे की मुलांच्या संगोपनशास्त्राचे व मानसशास्त्राचे अध्ययन ज्यांनी केले नाही असे लोक या मासिकांचे संपादक असल्याने मुलांना आवडेल व उप-युक्त होईल असे प्रकाशन आजच्या संपादकवर्गाकडून होणेच शक्य नाही व कोणी अपेक्षाही करूं नये. उदाहरणार्थ म्हणून त्याने आनंद मासिकाच्या तिन्ही संपादकांच्या ज्ञानाची मजजवळ

चिकित्सा केली. मराठींत बालवाङ्मय अगदींच कमी प्रतीचे आहे व आहे तेंही इतके कमी कीं काहीं विचारूंच नका ! द्रौपदी, सीता, राम, कृष्ण यांच्या चरित्रांपलीकडे मुलांना काहीं शिकविण्यासारखे आहे असे आमच्या बालवाङ्मयलेखकांना दिसतच नाही. त्यांतूनही चरित्रे लिहिणें आणि छापणें यांत केवळ व्यापारीच दृष्टी असते. या शालोपयोगी वाङ्मयाचीसुद्धां बरीचशी अशीच स्थिती आहे. नाही म्हणावयास अलीकडे तयार झालेली अत्रेघाटे, बेहरे, नेरूरकर यांची प्राथमिक पुस्तके पूर्वीपेक्षां कितीतरी चांगली आहेत. यांतही कर्नाटक प्रेसनें तयार केल्या अत्रेघाटे यांच्या पुस्तकांचा दर्जा पहिल्या प्रतीचा लागतो. निवडक गद्यपद्यवेचे काढण्यांत अलीकडे जराशी सुधारणा झालेली दिसते. प्रो. वामन मल्हार जोशी यांची गद्य पुस्तके व कर्नाटक हाऊसनें प्रसिद्ध केलेली 'महाराष्ट्र रसवंती' या नांवाची पद्य पुस्तके चांगल्यापैकी आहेत. अंकगणितें, भुगोल इतिहास वगैरे विषयावरील शालोपयोगी पुस्तकांतून अद्याप कितीतरी सुधारणा व्हावयास पाहिजे. या बाबतींत महत्त्वाची सूचना करावयाची अशी कीं शालोपयोगी पुस्तके त्या त्या विषयांतील तज्ञांकडून लिहिलीं जावी. विशेषतां प्राथमिक शिक्षणक्रमांत तज्ञ लेखकांनी लिहीलेल्या पुस्तकांचा अतिशय दुष्काळ आहे.

ऐतिहासिक पुस्तकांचे बाबतींत म्हणण्यासारखी प्रगती होत नाही. ऐतिहासिक संशोधनात्मक जे थोडेफार ग्रंथ निघतात तेवढेंच. या बाबतींत काहीं संशोधक अविश्रांत श्रम करीत आहेत. ऐतिहासिक वाङ्मयाचा प्रो. पोतदार यानीं घेतलेला आढावा स्वतंत्र पुस्तक रूपानें प्रसिद्ध झाला आहे तो वाचला म्हणजे आपण केले काय, करावयाचे किती आहे व कसे काम केले पाहिजे याची पूर्ण कल्पना होते. महानुभावपंथीय वाङ्मयाचे संशोधन आणि थोडे थोडे प्रकाशन सुरूं झालें आहे. महानुभाव वाङ्मयाचे कार्य वज्हाड

नागपूरकडील संशोधक श्री. देशपांडे, प्रो. मिराशी, प्रो. कोलते इत्यादी कार्यकर्ते मनापासून करीत असलेले दिसतात. पण संशोधनाचे मानाने इतिहास-ग्रंथ मात्र तयार होत नाहीत. याचे कारण संशोधक हे संशोधनाचे मार्ग आहेत आणि झालेल्या संशोधनाचा अभ्यास करून त्यावरून स्वतंत्र ग्रंथरचना करणारे लेखक मात्र नाहीत. श्री यशवंत नरसिंह केळकर हे वसईच्या संग्रमावर एक पुस्तक लिहीत होते हे मला माहीत आहे. पुस्तक लौकरच प्रसिद्ध होईल असे मी नुकतेच वाचले. प्रो. पोतदार यांनी श्री. नाथपंथ-ग्रंथमाला सुरू केली असून त्याचे पहिले पुष्प 'ज्ञानप्रदीप' या खाली प्रसिद्ध झाले आहे. धुळ्याचे श्री. देव यांचे प्रकाशन सुरू आहे. भारत इतिहास संशोधक मंडळाचे व राजवाडे इतिहास संशोधन मंडळाचे नियतकालिकांतून इतिहासिक ग्रंथासामुग्री प्रसिद्ध होत आहे पण ऐतिहासिक ग्रंथाला मागणी नसते ही फारच खेदाची गोष्ट होय. पुन्हां पुन्हां मागणी कशी उत्पन्न होईल हा प्रश्न माझ्या समोर उभा राहतो. या बाबतीत कांहीं योजना प्रसिद्ध करावी असा माझा विचार आहे. माझी योजना पसंत पडली व कार्यकर्ते पुढे आले तर वरीच अभिनंदनीय प्रगती होईल ! पाहू या कसे जमते ते !

या साली कांहीं वादही झाले. त्यांत पावित्र्यविडंबन या वादाचा प्रथम उल्लेख केला पाहिजे. ह्या वादाचा उगम कै. श्री. कृ. कोल्हटकर यांच्यासंबंधी आलेल्या एका उल्लेखावरून प्रो. श्री. म. माटे यांच्या पासून झाला. कोल्हटकर यांच्याविषयी निघालेल्या उद्गारामुळे त्यांचा शिष्यवर्ग जरा रागावला यांत शंका नाही. त्यामुळे 'पावित्र्यविडंबन' हा विषय पुणे येथील संमेलनामध्ये चर्चेसाठी ठेवण्यात आला. या चर्चेत अनेकांनी भाग घेतला असला तरी त्यां— सर्वांत प्रो. माटे यांचे भाषण फारच छान झाले. प्रो. ना. के. बेहरे यांनी



घाच विषयावर ' महाराष्ट्रशारदा ' मासिकांत एक लेख लिहिला. श्री. खांडेकर यांनी मुंबई साहित्यसंमेलनाचे अध्यक्षस्थानावरून प्रो. माटे यांची थोडीशी टवाळी केली. ' पावित्र्याच्या पल्लोके ' या कादंबरीचे लेखक श्री. देशपांडे यांनी जे भाषण केले ते तर शिष्टाचारास सोडून झाल्याचे वाचले. विहार साप्ताहिकानें या वादांत भाग घेतला. एवढें सर्व होऊन वादाचा शेवट झाला नाहीं. कदाचित त्याचा उल्लेख यापुढेही करण्यांत येईल असें वाटते. या वादांत एक पक्ष व्यक्तिविषयक आदारानें व दुसरा पक्ष सामुदायिक विचारप्रवृत्तीनें भाग घेत होता. या बाबतींत मला एवढेंच सुचवावयाचे आहे कीं पावित्र्याची भावना कधींच नाहिशीं होणें शक्य नाहीं. फक्त पावित्र्यविषयक व्यक्ती आणि स्थान बदलू शकेल. तेव्हां दुसऱ्याच्या भावना दुखविणें हें केव्हांही इष्ट नाहीं. सुधारणेच्या दृष्टीनें चिकित्सा करणें वेगळे व टवाळी करणें वेगळे ! एखाद्यानें एकाद्याची भावना दुखविली म्हणून त्यानें टीका केली तर त्यांत चुकले कोठें. उलट प्रथम टीका केली त्याच्याही भावना प्रतिटाकाकारानीं या वादांत दुखविल्याच किं नाहीं ! पावित्र्यविडंबनासंबंधीं एक ठराव इंदूर संमेलनांत मंजूर करण्याची श्री. कृष्णराव मराठे यांनी तयारी केली होती. पण ठरावास पाठिंबा द्यावयासच त्यांना कोणी मिळाला नाहीं ! संगीत नाटकाच्या आद्य जनकत्वाचा वादही असाच. हा वाद ' प्रमोद ' साप्ताहिकानें काढला. तारीख वारानें कोणी आद्य जनक ठरला तरी ज्याच्या प्रयत्नानें प्रसार व लोकप्रियता वाढते त्याची योग्यता मोठी. आणि म्हणूनच लोक त्याच व्यक्तीला महत्व देत असतात. किलोस्कर हे संगीत नाट्यांचें आद्यजनक किं त्रिलोकेकर आद्यजनक या वादाचाही शेवट याच मुद्यावर झाला पाहिजे. श्रीशारदेच्या दरबारातील मुंबईचे एक ' चित्रगुप्त ' श्री. श्रीपाद के. नाईक यांनी रोजकीर्दी काढून यांत संशोधन

केले. जो जो संशोधन करावे तो तो आद्यजनकत्व ठरविण्यासाठी त्यांना अद्याप मागे मागे जावे लागत आहे !

पण या दोन्ही वादांपेक्षां 'महाराष्ट्राचे केंद्र' पुणे शहर कां दुसरें कोणते या संबधीं या साली जी टीका झाली ती वाचून मात्र कोणासही खेद होईल ! या वादास प्रो. द. वा. पोतदार यांच्या नागपूरकडील एक दोन व्याख्यानानीं सुरवात झाली. त्याबद्दल प्रो. बनहट्टी यांनीं 'फुलोर' या पुस्तकांत लेख लिहिला व हा लेख 'प्रतिभे'ने पुनर्द्रित केला. प्रो. बनहट्टी यांचा लेख वाचला म्हणजे प्रांताभिमानानें प्रो. बनहट्टी ही बरेच अंध झाले असावेत असे वाटते. निदान पुण्याविरुद्ध त्यांचे मत बरेंच कलुषित झाल्याचे दिसत आहे. या सर्व लेखांत पुणे हे 'महाराष्ट्राचे केंद्र' एका काळीं होते हल्ली नाहीं असें सिद्ध करण्याचा प्रो. बनहट्टी यांनीं जो बराच हट्टाहास केला आहे त्या ऐवजीं पुणे हे केंद्र नाहीं तर मग कोणते शहर आज केंद्र होऊ शकते हें त्यांनीं निश्चितपणें सांगितलें असतें तर बरें झाले असतें. पुणे येथील संस्थांची त्यांनीं जी टवाळी केली आहे ती वाचली म्हणजे ह्या विद्वानाच्या टीकेमागें नागपूरकडील साहित्यपुढारी होण्याचा व्यक्तविषयक स्वार्थ असावा असा भास होतो. अजून हा वाद मिटला नाही व तो सन १९३६ या सालींही चालू रहाणार असें दिसतें. या वादांत भाग घेणाऱ्या विद्वानांना मी एवढेंच नम्रपणें सुचवितों कीं पुण्याचे वैभव पाहून बोटें मोडीत बसण्याऐवजीं स्वतांच्या आवडत्या शहराचे वैभव वाढविण्याचा प्रयत्न करणें हेच शहाणपणाचे व अभिमानाचे आहे. महाराष्ट्राचे पुणे हें एकच केंद्र असण्याऐवजीं आणखी चार पांच निर्माण झाली तरी कोणास नको कां आहेत ? महाराष्ट्र साहित्य परिषदेस नागपूर येथें मोफत जागा देण्यासंबंधीं एक पत्र इंदूर संमेलनाकडे आले होते. या देणगी मागें दातृत्वाची उदारता असण्याऐवजीं पुण्याचा द्वेष असावा

अशी मला शंका येते. महाराष्ट्र साहित्य परिषदेची मुख्य कचेरी पुण्या काय म्हणून नागपुरास पाहिजे असा अभिनिवेश या देणगीत दिसून येतो. पण प्रो. नारायण केशव बेहेरे यांची माझी भेट झाली म्हणजे मी अधिक चौकशी करणार आहे. प्रो. बेहेरे बनहट्टी वगैरे मंडळीं पुण्यामुंबईपासून फुटून सवता सुभा करून पहात आहेत; तो कितपत यशस्वी होईल व त्याचे परिणाम काय होतील हे आजच सांगता येत नाही !

मात्र या सर्व विद्वानांना मला एक इषारा द्यावयाचा आहे. आज सर्व बाजूनी व सर्वांकडून महाराष्ट्रावर आघात होत आहे. महाराष्ट्राला खड्यासारखे वगळून कार्य करण्याची प्रवृत्ती दिवसेंदिवस वाढत असलेली दिसते. दक्षिणी व गुजराथी या मधील तेढ जोरात आहे. महाराष्ट्रीयाना मान देण्याचे व त्यांच्या कर्तृत्वशक्तीचे कौतुक करण्याचे इतरांना जीवावरचे संकट वाटते. गांधींच्या उदयापासून तर ही दुष्ट प्रवृत्ती जोरात आली असे म्हणावयास हरकत नाही. खुद्द गांधी हे महाराष्ट्राचे व महाराष्ट्रीयानांचे पक्के द्वेषी आहेत ! पंडित जवाहिरलाल नेहरूं सुद्धा महाराष्ट्रीयानांचा अपमान करण्यांत मोठे भूषण मानतात ! सामाजिककार्य असो व साहित्यविषयक कार्य असो आजच्या स्थितीत आपण सर्वांनी एक होऊन महाराष्ट्रापुढे इतरांना वाकावयास लावण्याची महत्वाकांक्षा आपण धरावयास नको काय ? स्वतांचा मान, स्वतांची श्रेष्ठता, स्वतांची कर्तबगारी आणि स्वतांचा इतिहास विसरणे म्हणजे राष्ट्रीयवृत्ती नव्हे. इतरांकडून लाथा मिळत असतां त्या निमूटपणे सहन करणे व त्या सहनशीलनेला राष्ट्रीय वृत्तीचा मुलामा चढवून गौरव करणे ही खचित लाजिरवाणी गोष्ट होय. बाहेर आघात होत असतां आपल्यापैकींच काहीं मंडळी महाराष्ट्राची निर्भत्सना करीत असतात व त्यांचेच स्थाना कौतुक वाटते. या वाढत्या वृत्तीला आळा घाडण्याऐवजी

महाराष्ट्राचे केंद्र पुणे शहर का नागपूरमुंबई हा वाद कसला करीत बसला आहांत ? इंग्रजांनी मराठेशाहीला घेरले असतां आपसांत भांडणाऱ्या आपल्या पूर्वजाना हंसणारे तुम्ही आज स्वतां काय करीत आहांत याचा विचार करा. दिवसेंदिवस आपली पिच्छेडाट होत असताना पुणे शहराला व पुणेकरांना दोष देऊन का महाराष्ट्राची उन्नति होणार आहे ! महाराष्ट्राची उन्नति करण्याचा ताम्रपट कांहीं एकट्या पुण्याला दिलेला नाही. इतराच्या मनगटांत जोर असेल तर तो त्यांनी दाखवावा. पुणे शहर काय त्यांचा हात धरीत आहे ? महाराष्ट्राचे केंद्रस्थान पुणे शहर नाही असे ठरले तर भुगोलांत आणि इतिहासांत पुणे शहराचा उल्लेख कांहीं मद्रास इलाख्यामध्ये करण्यांत येणार नाही ! प्रो. वहेरे, प्रो. बनहट्टी वगैरे मंडळींत हे काय नवीन भुत संचारले आहे कळत नाही ! हा वाद अद्याप मिटला नाही. सन १९३६ सालांतही तो चालूच रहाणार.

प्रो. बेहेरे आणि प्रो. पोतदार या दोन विद्वानांत या सालीं जी खडाजंगी उडाली ती वाचून या दोघांही विद्वानांचे थोडे थोडे चुकले असेच म्हणावे लागते. पुरते वाचून व चौकशी करून मग प्रो. बेहेरे यांनी 'महाराष्ट्र शारदे' लिहावयास पाहिजे होते. व त्यानंतर प्रो. पोतदार यांनीही उत्तर देण्यासाठीं म्हणून महाराष्ट्र वगैरे पत्रांकडे धांव घेण्याऐवजी 'महाराष्ट्र शारदे' च्या पुढील अंकांपर्यंत थांबावयास काय हरकत होती ? पण यांत असें झाले की 'महाराष्ट्र'चे व प्रो. बेहेरे यांचे हल्ली चांगलेच वैमनस्य आहे. प्रो. बेहेरे यांच्यासंबंधीं गैरसमज पसरवयास संधि मिळाल्यास महाराष्ट्राला पाहिजेच असते. प्रो. पोतदार यांनीं खाजगी म्हणून माहिती दिली आणि महाराष्ट्रांनै प्रसिद्ध करून टाकली. पाध्ये टाकिकर वादही असाच. या वादाकडे प्रकाशक लेखक यातील संबंध या दृष्टीने पाहिले म्हणजे लखकाला मोबदला दिल्यावर त्याच्या लिखाणाची मालकी सर्वस्वी प्रकाशकडे.

जाते असें माझे मत आहे. म्हणून अगोदर लेखकप्रकाशक यामधें मजकूरात फेरबदल करण्याचा हक्क कोणाचा यासंबंधीं करारच व्हावयास पाहिजे ! त्यातून ' आजकालचा महाराष्ट्र ' या पुस्तकांची तयारी नोकरांच्या वेळांत करण्यांत आल्यानें तर श्री. टांकेकर यांच्या म्हणण्यांत कायद्याचे दृष्टीनें कांहीं अर्थ नाही ! या बाबतींत कांहीं वर्षापूर्वीं ' वाईकर भटजी ' या पुस्तकासंबंधीं झालेल्या दाव्याचा निकाल लेखकानी नेहमी दृष्टीपुढें ठेवला पाहिजे. हा पाध्येटांकेकर-कुळकर्णी वाद कोर्टांत जाणार होता. पण तसा कांहीं प्रकार अद्याप बडला नाही. मुंबईचे एक प्रसिद्ध बुकसेलर रा. तुकाराम पुंडलीक शेटे यानी सुखटणकरभागवत यांच्यावर फौजदारी फिर्यादी मुंबईच्या कोर्टांत गुदरल्या आहेत. त्यांचा निकाल काय लागतो तें पुढील वर्षी कळेल. या फिर्यादी फार महत्त्वाच्या आहेत.

कंपूशाही विरुद्ध प्रतिभेत 'रामशास्त्री' यांनीं जी वेळोवेळीं टीका केली; त्यामुळें खांडेकरभक्त विरुद्ध रामशास्त्री यामधें जो वाद झाला तोही कांहीं कमी महत्त्वाचा नाही ! रामशास्त्री यांनीं खांडेकर यांच्या विरुद्ध जी टीका केली ती निःपक्षपातीपणाची होती. पण त्यामुळें खांडेकर यांचे स्नेही व भक्तगण यांनीं गाल फुगविले व हमरीतुमरी सुरू केली. साहित्यांत बुवावाजी आहे ती नष्ट व्हावी हा रामशास्त्राचा मुख्य हेतू दिसला. कंपूशाहीमुळें साहित्याचे नुक-
सान होते ही त्यांची तक्रार खरी असली तरी कंपूशाही कशीच नष्ट होणार नाही असें माझे मत आहे. ज्या कंपूशाही विरुद्ध रामशास्त्री प्रतिभेतून निकाल फर्मावित असतात त्या 'प्रतिभे'भोंवती कंपूशाहीचेही कडे आहेच की ! श्री. वरेरकर यांनीं पुण्याच्या कंपूशाहीविरुद्ध तक्रार केली; पण मुंबईत काय कंपूशाही कमी आहे ? नागपूर येथे काय कंपू नाहीत ? बडोद्यांत कंपू नाहीत ? कोल्हापुरांत काय कंपू नाहीत ? सर्वत्र कंपू आहेत. मुंबईतील एका लेखकाची एका

सामान्य विद्यापिठांत मराठीचे प्रोफेसर म्हणून अजविरून निवड झाल्यावर 'सर्व्हंट ऑफ इंडिया'चे सभागृहांत त्यास मेजवानी झडली ! ती मुंबईतील एका कंपनीचे नाहीं कां दिल्ली ? तेःहां कंपनी असणार पण या कंपनीमुळे जे साहित्यिक कंपुंत सामील होत नाहींत त्यांचे नुकसान होते ही तक्रार मात्र अगदी खरी आहे. रामशास्त्री यांनी कंपनीविरुद्ध लिहितांना आपण स्वतां एका कंपनीत आहोंत असा आपल्या लिखाणानें भासही होऊं दिला नाहीं इतके त्यांचे लेखन निःपक्षपातिपणाचे व व्यक्तीद्वेषविरहित होते द्रावदल मी रामशास्त्र्यांचे अभिनंदन करतो. या टांकेचाच परिणाम म्हणजे मुंबईत येत्या मार्च पासून 'जोत्सना' नांवाचे मासिक सुरू होणार ! माझे हे विधान वाचून जोत्सनेचे सातही यजमान माझ्यावर रागवतालही. पण मला मात्र तसेंच वाटत आहे एवढें खरें. या नव्या मासिकाची जाहिरात नोव्हेंबर महिन्यापासून माझ्या वाचनांत येते आहे. मासिके कोणी काढावी व कशी काढावी या संबंधीं मला एकदां स्विस्तर लिहावयाचे आहे. पण या 'जोत्सना' मासिकांत माझे कांहीं स्नेहीही सांपडले असल्यानें तूर्त तो विचार लांबणीवरच टाकावा लागत आहे. या सात संपादकांत कांहीं माझे स्नेही व कांहीं बराच परिचित मंडळी आहे. तूर्त आंतून कींवा वाटत असली तरी मासिक यशस्वी होवो असें मी मनःपूर्वक इच्छित आहे. उत्साहाला मर्यादा नसते. त्यामुळे अनेक साहित्यप्रेमी व कांहीं व्यापारी बुद्धीनें या नियतकालिकाचें धंद्यांत पडत असतात. व शेवटीं कल्पनेच्या विरुद्ध शेट्ट होतो. असाच आजपर्यंत बहुतेकांचा अनुभव आहे. सांगावयाचें असें कीं कंपनी असली तरी ती स्वतांला तारक होईल अशी असावी आणि दुसऱ्याला तारक नसली म्हणजे झाले.

असो, सन १९३५ सालचे हे साहित्यसमालोचन संपले. हे समालोचन मी बहुतेक स्वतांच्या स्मृतीने लिहीले आहे. त्यामुळे त्यांत कांहीं पुस्तके गळली असण्याचा संभव आहे हे मी वर सांगितलेच. त्याची कांहीं उदाहरणे देतो. मी प्रसिद्ध केलेला श्री. शामराव ओक यांच्या 'कोपरखळ्या' या बहुशा विनोदी व उपहासात्मक कथासंग्रहाचा उल्लेख मागे करण्याचे राहूनच गेले. श्री. शामराव ओक हे एक बुद्धीमान लेखक आहेत व त्याचे विनोदी लेखण बरेच बोचक असते. मराठींत जे दोन तीम या धर्तीचे लेखन करणारे साहित्यिक आहेत त्यापैकी श्री. शामराव ओक हे एक होत. 'सांष्टांग नमस्कार' या ग्रि. अत्रे यांच्या नाटकाची दुसरी आवृत्ती मीच प्रसिद्ध केली. त्याचाही उल्लेख राहून गेला. त्याचप्रमाणे श्री. स. अ. आळतेकर यांच्या 'दांपत्य सुखाचा ज्ञान कोश' आणि 'अच्युतराव स्मारक ग्रंथ भाग ३ रा' व 'वनभोजन' या पुस्तकांसंबंधी लिहिण्याचे विसरलो. यापैकी पहिले पुस्तकही मीच प्रसिद्ध केले आहे. एवढे दोष गळले म्हणजे बहुधा महत्वाचे असे एकही पुस्तक अनुल्लेखित राहिले असेल असे वाटत नाही. नियतकालिकासंबंधी थोडासा खुलासा करतो. नासिक येथे निघणारे 'वाङ्मय' मासिक बंद झाले असे लिहिले पण ता. ३१ जानेवारी रोजी याचा ताजा जोडअंक माझ्या पहाण्यांत आला. तोपर्यंत यांचे अंक मला सापडलेच नाहींत. हा जोड अंक आगष्ट-सप्टेंबर महिन्याचा आहे. गेल्या तीन चार महिन्यांत अंक न निघाल्यामुळे मासिक बंद झाले असे मी लिहिल्यास तो माझा दोष नव्हे. इतरही कांहीं मासिकांचे बाबतीत असाच प्रकार झाला असण्याचा संभव आहे. असे कांहीं दोष असल्यास वाचकांनी क्षमा करावी.



REFB 000 5338

REFBK-0005338